वर्ष ३ अंक २९
विक्रम संवत् २०७७ फाल्गुन
मार्च २०२१

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

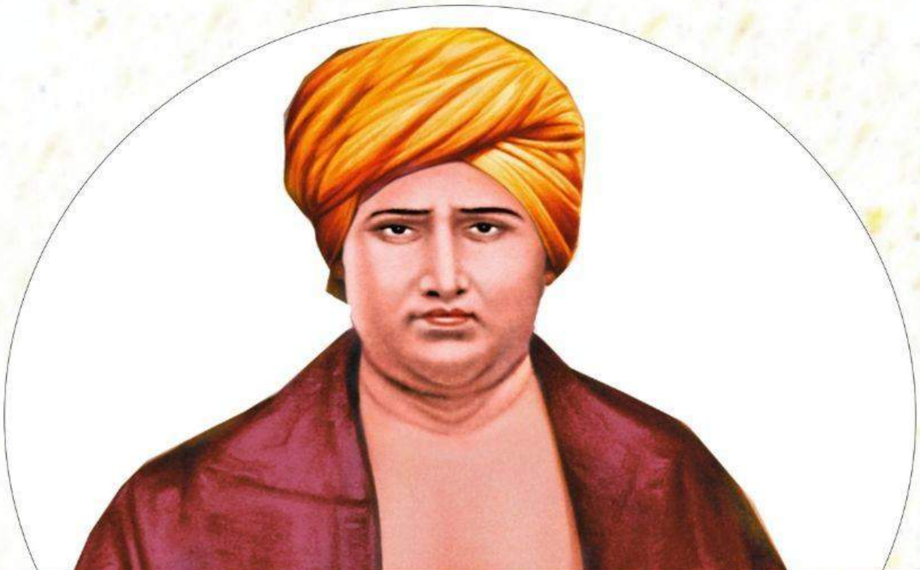

आर्य लेखक परिषद्

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

मार्च २०२१

वर्ष–३ अंक–२६,
विक्रम संवत् २०७७
दयानन्दाब्द– १९७
कलि संवत् – ५१२२
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९९३०,
९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. संन्यास (सम्पादकीय)

२. पत्थर के भगवानों ने (कविता)

३. आधुनिक विकासवदियों की लिपि और भाषा विज्ञान...

४. Fifth Duty (ii) : Kindness to Animals

५. गर्भाधान संस्कार

६. श्रेष्ठ सन्तान का प्रथम सोपान है गर्भाधान...

७. ऋषि दयानन्द की वाणी ने आलोकित किया...

८. क्रान्तिकारियों के प्रेरणा स्रोत...

९. एक कोशिश (कविता)

१०. सच्ची भक्ति (कहानी)

११. महिलाओं की आजादी का सवाल

१२. होली खेलन नहिं हम जायो रे...

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com

वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/

फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

संन्यास

वैदिकों के समाज में मानवी नियोजन के अन्तर्गत संन्यास एक आश्रम है, जिसमें प्रविष्ट होने वाला मनुष्य दीक्षा ग्रहण करके संन्यासी कहलाता है। जो कोई भी विद्वान् पुरुष मोहादिआवरण और पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर परोपकारार्थ सर्वत्र विचरण हेतु समुद्यत हो और इस हेतु समाज के समक्ष उपस्थित होकर निवेदन करे कि मैं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। तब समाज की अनुमति से निर्धारित विधि पूर्वक दीक्षा ग्रहण करना संन्यास संस्कार कहलाता है।

सम्यक् न्यस्यन्त्यधर्माचरणानि येन वा सम्यक् नित्यं सत्यकर्मस्वास्त उपविशति स्थिरी भवति येन स संन्यासः। संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी।।

उक्त उद्धरण का अर्थ है कि जिसके द्वारा भलीप्रकार पूरी तरह से अधर्माचरणों को परे रख दिया जाए और भली प्रकार पूरी तरह से नित्य सत्य कर्मों में स्थिर प्रतिष्ठित हो जाया जाए तो वह संन्यास है। यह योग्यता जो प्राप्त कर लेता है वह संन्यासी होता है।

संन्यास की योग्यता प्राप्त करने और संन्यास ग्रहण के तीन प्रकार हैं।

1. क्रम संन्यास –

जब ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ करते हुए संन्यास की योग्यता प्राप्त करके संन्यास ग्रहण किया जाता है तब इसे क्रम संन्यास कहा जाता है। यथा

स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।।

– जाबालोपनिषद्

अधीत्य विधिवद् वेदान् पुत्रांश्चोतपाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे नियोजयेत्।।
वनेषु तु विहृत्यैव तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागो त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्।। मनु।।

2. लब्धवैराग्य संन्यास –

किसी भी आश्रम में रहते हुए जब भी वैराग्य हो जाए तभी संन्यास ग्रहण कर लिया जाए। यथा–

यदहरेव विरजेद् तदहरेव प्रव्रजेद् वनाद्वा गृहाद्वा।।

– शतपथ

3. ब्रह्मचर्यमय संन्यास –

विद्याध्ययन के पश्चात् सीधे ब्रह्मचर्य से ही संन्यास ग्रहण कर लेना। यथा –

ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्।।

– जाबालोपनिषद्

इस तीसरे प्रकार के संन्यास को सर्वोत्तम माना गया है परन्तु यह बहुत कठिन है। स्वामी दयानन्द सरस्वती कहते हैं कि *"यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य, सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त हो कर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठ जावे, पक्षपात रहित हो कर सबके उपकार की इच्छा होवे और जिसको दृढ़ निश्चय हो जावे कि मैं मरणपर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूंगा तो वह गृहाश्रम न करके ब्रह्मचर्य को पूर्ण करके ही संन्यास लेवे"।।*

संन्यास कहीं से भी लिया जाए परन्तु उसके लिए अपेक्षित योग्यता का होना अनिवार्य है। ***सर्वप्रथम*** संन्यास के लिए आवश्यक है स्वयं का ब्राह्मण होना क्योंकि ब्राह्मण वर्ण वाले को ही संन्यास का अधिकार है। ***दूसरी*** आवश्यकता विद्वान् होना। ***तीसरी*** आवश्यकता है वैराग्य का होना। ***चौथी*** आवश्यकता है पक्षपात रहित होकर परोपकार करने की इच्छा का होना और ***पांचवी*** आवश्यकता है मोक्ष प्राप्ति की प्रबल इच्छा। इसलिए संन्यास ग्रहण करने वाला ईश्वर को साक्षी करके सबके समक्ष घोषणा करता है –

पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा मया परित्यक्ता, मत्तः सर्व भूतेभ्योऽभयमस्तु।।

अर्थात् मैंने पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा का परित्याग कर दिया है, मुझसे सभी प्राणियों के लिए अभय प्राप्त हो।

और फिर –

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्चोत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।।

अर्थात् तीनों एषणाओं से ऊपर उठकर संन्यासी भिक्षावृत्ति को अपनाते हैं।

खेद है कि वर्तमान समय का संन्यासी वृंद उक्त किसी आवश्यकता को पूरा नहीं करता उसने किसी

एषणा का त्याग नहीं कर रखा। वह न ब्राह्मण है, न विरक्त है, न पक्षपात रहित है और न ही लोकोपकार और मोक्ष की इच्छा वाला है। तीनों एषणाओं में वह गृहस्थियों से भी अधिक ग्रस्त है। लगभग सभी संन्यासी ऐशो–आराम और विलासिता का जीवन जीते मिलते हैं। ईश्वरोपासना के लिए पांच मिनट और पगड़ी के पेंच संवारने में एक घण्टा तक दर्पण के सामने खड़े रहते हैं। अनेक संन्यासी पूंजीपति हैं,ब्याज का धन्धा करते हैं, व्यापार और माल का विज्ञापन करते हैं। आर्यसमाज में भिक्षाभोजी यतियों का तो अभाव ही है। वर्तमान में दो तरह के संन्यासी मिलते हैं – एक विद्याविहीन भोजनभट्ट और दूसरे मठाधीश राजनीतिबाज। विद्वान्, अनासक्त, योगी, निर्लोभी, परोपकार परायण यतियों के तो दर्शन ही दुर्लभ हो चुके हैं। हमारे यतियों का संसार कुछ पूंजीपतियों के आस–पास ही सिमट कर रह गया है। उन्हीं की विरुदावली का बखान करने में लगे हुए मिलते हैं। धन के लोभ में वहीं अपना टिमटिमाता दीया लिए घूमते रहते हैं जहाँ पहले से ही हजार वाट का बल्ब जल रहा होता है। गाँव की अन्धेरी गलियों, झुग्गी–झोपड़ियों में एक भी नहीं जाता है। फेसबुक पर अपना विज्ञापन करने और स्वयं का सम्मान करवाने की योजना बनाने में लगे रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह आश्रम लगभग अप्रासंगिक सा हो चुका है। लोगों में संन्यासियों के प्रति श्रद्धा और आदर नहीं रहा।

वर्णाश्रम विध्वंस हो जाने और जातिवाद बढ़ जाने से अब संन्यासी का स्थान बाबा जी लोगों ने ले लिया है। हर जाति के साधु बाबाओं की बाढ़ आ गई है। इनमें अनपढ़, मूर्ख, चोर, डाकू, हत्यारे, ठग और नशेबाज, कामचोर, मुफ्तखोर ही मिलते हैं। इनके अतिरिक्त नशीले पदार्थों के तस्कर, काले धन को सफेद करने वाले, व्यभिचार का धन्धा चलाने वाले, जासूसी करने वाले भी बाबाओं के भेष में रहते हैं। इस प्रकार यह संन्यास आश्रम हमारे सर्वस्व का सत्यानाश करने वाला है। ये अयोग्य, पतित, श्रमहीन और अपराधी लोग मेहनतकश लोगों के खून–पसीने की कमाई का बहुत बड़ा भाग निगल जाते हैं और देश के श्रमिक दो जून का संतुलित आहार भी नहीं पाते हैं। ऐसा करके भी ये बाबा लोग स्वयं को साधु–सन्त कहते हैं। दिनकर के शब्दों में –

कर्मनिष्ठ नर की भिक्षा पर सदा पालते तन को।
अपने को निर्लिप्त अधम बतलाते निखिल भुवन को।।

यह पलायनवादी संन्यास है, इसके लिए कभी भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा था कि –

धर्मराज संन्यास खोजना कायरता है मन की।
है सच्चा पुरुषार्थ ग्रन्थियां सुलझाना जीवन की।।

समाज में संन्यासाश्रम का प्रयोजन –

एक स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक है कि लोग निन्दित कर्मों से हट कर धर्मयुक्त आहार, विहार और व्यवहार को अपनाएं। लोभ और स्वार्थ के कारण अधिकतर लोग अधर्म की ओर झुक जाते हैं। धर्म का पालन दण्ड के भय या लोकनिन्दा के भय से ही करते हैं। मौका मिलते ही अपराध करते हैं और समाज को दूषित और अस्वस्थ कर देते हैं। इससे बचने के लिए एक विशेष प्रकार की शिक्षा और संस्कार की आवश्यकता होती है। यह कार्य वही लोग कर सकते हैं जो स्वयं आत्मानुशासित और स्वार्थमुक्त परोपकारी हों। जिनके लिए भर्तृहरि ने लिखा है –

एके ते पुरुषा परार्थघटकाःस्वार्थं विनिघ्नन्ति ये।।

और कविवर दिनकर के शब्दों में–

अशन वसन से हीन दीनता में जीवन धरने वाले।
सहकर भी अपमान मनुजता की चिन्ता करने वाले।
कवि कोविद विज्ञान विशारद कलाकार पण्डित ज्ञानी।
कनक नहीं कल्पना और उज्ज्वल चरित्र के अभिमानी।
इन विभूतियों को जब तक संसार न पहचानेगा।
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हे मानेगा।
तब तक थरती पड़ी पाप में इसी तरह अकुलाएगी।
लाख यत्न करने पर दुःख से छूट नहीं पाएगी।।

संन्यास आश्रम ऐसे ही लोगों की श्रमस्थली है। संसार का प्रयोजन भोग और अपवर्ग है। भोगमार्गी इसे दूषित करते हैं, अपवर्ग मार्गी इसका शोधन करते हैं। संन्यास आश्रम अपवर्ग मार्गियों का कार्यस्थल है। इस लिए महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में लिखा है कि – *''जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है उसी प्रकार समाज में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है। क्योंकि इसके विना विद्या और धर्म कभी नहीं बढ़ सकता। दूसरे आश्रमों को विद्याग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्तना दूसरे आश्रमों को*

दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रम नहीं कर सकता।"

मुझसे कोई पूछे तो मैं कहता हूँ कि संन्यासाश्रम समाज का अग्निशमन और संशयनिवारण केन्द्र है। जहाँ कहीं आग लग जाती है वहाँ अग्निशमन केन्द्र टैंकरों में पानी भर कर ले जाते हैं और आग बुझाते हैं। संन्यासी भी यही करता है। राग–द्वेष ईर्ष्या, क्रोध और घृणा से सुलगते मनों की आग जो सबकुछ जला डालती है, उसका शमन केवल संन्यासी ही कर सकते हैं और असत्य को सत्य बताने पर तुले विद्यादम्भियों से समाज को बचाने, संशय मिटाने और सत्य को प्रतिष्ठित करने का कार्य पक्षपातरहित संन्यासी ही कर सकते हैं। इसके लिए उनके पास आग बुझाने का पानी और प्रेम उत्पन्न करने वाला सत्य ज्ञान होना चाहिए, ज्वलनशील तेल और वैर बढ़ाने की सामग्री नहीं।

वर्तमान में दूसरों के श्रम पर पलने वाले, मूर्ख, कामचोर, मुफ्तखोर, पलायनवादी तथाकथित साधु–सन्तों के कारण देश में अपराध, नशाखोरी, आर्थिक गन्दगी, अज्ञान और अन्धविश्वास बढ़ता जा रहा है। पुत्रैषणा के स्थान पर शिष्यैषणा, एक दो पुत्र छोड़े हजारों चेले बना लिए, वित्तैषणा के स्थान पर मठैषणा, एक घर त्यागा अनेक मठ, गाड़ी घोड़े इकट्ठे कर लिए, एक घरवाली छोड़ी सैकड़ों चेलियां बना ली, त्याग और संयम करना था ऐय्याशी करने लगे।

किसी ने ठीक लिखा है –

रत्ती भर का सूत्र हटा तो डेढ़ सेर की माला है।
मानो चिड़ीमार ने अपना जाल कण्ठ में डाला है।।
जो सूत्र के हैं शत्रु जिनके स्थूल पेट विशाल हैं।
उच्छिष्ट देकर नारियों को प्राप्त करते माल हैं।
ये साधु भण्डारे उड़ाकर खाक में मिल जाएंगे।
इन चेलियों के मुखकमल रक्षा नहीं कर पाएंगे।।

आज समाज योग्य सच्चे संन्यासियों की बाट जोह रहा है।

महर्षि दयानन्द के अनुसार जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्यशास्त्रों का विचार–प्रचार नहीं करते, वे जगत् में व्यर्थ भार रूप हैं। समाज को चाहिए –

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्था संन्यास योगात् यतयः शुद्ध सत्वाः।। इति।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

पत्थर के भगवानों ने

मानव ने पत्थर पूजे, मानव को कब पहचान सका।
यद्यपि इसकी ही छाया में पा रंगरूप भगवान् सका।
मानव फुटपाथों पर सोते, भगवान् भवन में झूले पर।
मानव सुत पत्तल चाट रहे नैवेद्य वहां थाली भर-भर।

जाती हैं हजारों ही लाशें, बेकफन यहां श्मशानों में,
श्रृंगार नहीं पूरा होता, उनका रेशम के थानों में।
पत्थर नहलाए जाते हैं दुर्भाग्य दूध, घी से जल से।
भूखी भिखमंगी का बच्चा दो बूंद न पी पाया कल से।

इन्सान उठो फेंको पत्थर,मानव का अब पूजन होगा,
पण्डों के पेट नहीं होंगे, भूखों का भोग भजन होगा।
इन्सान न होगा गटरों में, मठ में पाषाण नहीं होगा,
अब स्वर्ग नर्क के ठेकों का, सौदा नीलाम नहीं होगा।

सोने- चान्दी के आभूषण पत्थर का साज नहीं होंगे,
घण्टे शंख निनादों से, हम बेआवाज नहीं होंगे।
सोने- चान्दी के ढेरों पर, जिन ने भगवान् बनाए हैं,
जिन ने मानव का खून चूस, कंकाल समान बनाए हैं।
यदि यही धर्म के नेता हैं, धिक्कार रहा इनको यह स्वर,
यदि यही धर्म के हैं धुरीण, लानत है इन पर है ठोकर।

मेरी आवाज पुकारेगी, मानव- मानव के कानों में,
फेंको - फेंको कुछ नहीं रखा, इन शोषण के भगवानों में।।

–✍ वेदप्रिय शास्त्री

आधुनिक विकासवादियों की लिपि और भाषा विज्ञान की समझ

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

पिछले अंक में आधुनिक विकास–क्रम को समझने के लिए लिपियों और भाषाओं के योगदान पर पड़ताल करने का प्रयास किया। अक्षर विज्ञान और भाषा विज्ञान की समझ होना आधुनिक विज्ञानवादियों के लिए कितना आवश्यक है, इसे समझना आवश्यक है। सामान्यतः विज्ञान के विकास को समझने के लिए हम अक्षर विज्ञान और भाषा विज्ञान की ओर नहीं देखते। जबकि सृष्टि विकास को समझने के लिए अक्षर और भाषा विज्ञान को समझना अति आवश्यक है। अब प्रश्न उठता है क्या किसी भी लिपि या भाषा से आधुनिक विकास को समझा जा सकता है? क्या विकास को समझना लिपियों के विकास की वैज्ञानिकता से कोई सीधा सम्बन्ध है? पिछले अंक में लिपि और भाषा विकास–क्रम की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला था। उससे पता चला कि देवनागरी लिपि और संस्कृत भाषा का विकास–क्रम वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है। और यह भी जताने का प्रयास किया था कि वैदिक वांगमय में लिपि और भाषा विकास का वैज्ञानिक वर्णन किया गया है। ध्यान रहे, इसकी गहराई से विवेचना हम पिछले कुछ अंकों में करते आ रहे हैं। इस अंक में पिछले अंक से आगे की विवेचना की है। आशा है पाठकगण स्वाध्याय कर अपने दृष्टिकोण से अवगत कराएंगे। – *सम्पादक*

वेदों में लिपिज्ञान व लेखनकला का वर्णन

यह कुछ ही लोग जानते होंगे कि सृष्टि–विकास का जितना वैज्ञानिक और तथ्यात्मक वर्णन वेदों में है, अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता है। इसी तरह लिपि और भाषा के सम्बन्ध में वेद और वैदिक वांगमय में जितना वैज्ञानिक और तथ्यपरक वर्णन किया गया है, अन्यत्र नहीं है। सृष्टि के आदि ग्रन्थ वेदों में लिपिज्ञान और लेखनकला का वर्णन अनेक मन्त्रों में मिलता है। अथर्ववेद व यजुर्वेद में इनका वर्णन सुलेख, आकृतिमूलक लेख, ऋण–सम्बन्धी लेख का उल्लेख मिलता है। ये मन्त्र निम्न हैं –

(क) अजैषं त्वा संलिखितम्। (अथर्व. 7–50–5) (सुलेख)
(ख) क एषां कर्करी लिखत्। (अथर्व.20–132–8) (चित्रात्मक लेख)
(ग) यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन। (अथर्व.12–3–22) (लेन–देन का लेख)
(घ) अप शीर्षण्यं लिखात्। (अथर्व. 14–2–68) (ऊपर की रेखाएँ) अथर्ववेद में 'अक्षर' शब्द का छोटी इकाई के रूप में उल्लेख है। इससे ही विभिन्न छन्दों की मात्राएँ और वर्ण गिने जाते थे। अक्षरेण मिमते सप्त वाणीः। (अथर्व.9–10–2) अथर्ववेद में 'सहस्त्राक्षर' शब्द आया है। इससे ज्ञात होता है कि 1 हजार वर्णों वाले मन्त्रादि होते थे। इसी प्रकार छन्दों का उल्लेख भी अथर्ववेंद (19–21–1) में आया है जिसमें 7 सात छन्दों का उल्लेख है। यजुर्वेद में 11, 14 और 22 छन्दों का उल्लेख है।(यजुर्वेद.21.12 से 22, .23.33 से 34, .28.24 से 45) साथ ही उनके पादों का उल्लेख मिलता है। तैतरीय, मैत्रायणी, काठक आदि संहिताओं में छन्दों के पाद और अक्षरों की गणना भी दी गई है। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र में अनेक स्थलों पर लेखन–कला का उल्लेख मिलता है। इनमें लेख, लेखन और लेखक शब्दों का प्रयोग है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वेदों में उल्लिखित अक्षरों, शब्दों, छन्दों, लेख, लेखन और लेखक लिपि की प्राचीनता और उसके लेखन से सम्बन्धित है। इससे इतिहासकारों और भाषाविदों की वे मान्यताएँ और धारणाएँ निर्मूल सिद्ध हो जाती है जिनमें लेखन कला का काल ईसा के बाद बताया जाता है।

वेदों और अन्य वैदिक वांगमय के ग्रन्थों में लेख, लेखन और लेखक शब्दों का वर्णन लेखन–कला से ही सम्बन्धित हैं या मात्र कल्पना है? इस प्रश्न का उत्तर है कि वेद में जिस संदर्भ या विषय का वेदों में उल्लेख है, वह आलंकारिक हो सकता है लेकिन काल्पनिक नहीं। लेखन, लेखक और लेख शब्दों का वर्णन यह बताता है कि वेद लाखों वर्ष पूर्व लिखे गए थे और उनका

विषयानुसार संग्रह कर 'संहिताएँ' बनाई गईं। यह लिपि और भाषा का तथ्यपरक वर्णन है जो वेदों से प्राप्त होता है।

अक्षरों की वैज्ञानिकता की विवेचना

वैदिक लिपियों के ध्वनि संकेतों में प्रयोग किए जाने वाले अक्षरों में उनकी उत्पत्ति के समय से आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि प्राकृतिक तत्त्व या उनके विषय सृष्टि से लेकर अब तक अपरिवर्तनीय रहे हैं। इससे यह ज्ञात क्या नहीं होता कि लिपि के आदर्श या मानक भी आर्यो ने ही निर्धारित किए थे। इसी प्रकार देवनागरी और ब्राह्मी लिपि के अक्षरों का विकास लिपि सिद्धान्त के अनुसार हुआ है। इनकी उत्पत्ति की विवेचना करने पर ज्ञात होता है कि ये अत्यन्त वैज्ञानिक और प्रमाणिक आधार पर स्थापित हुईं। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि ब्राह्मी और देवनागरी लिपि ने वेदों की भाषा को परिवर्तित होने से बचाया है। लिपि की स्थिरता के कारण जिन अक्षरों का जो अर्थ उनकी उत्पत्ति के समय निश्चित हुआ था वे अर्थ उसी रूप में आज भी हैं। लिपि की वैज्ञानिकता और वैदिक भाषा की अपौरुषेयता के कारण वेदों में आज तक कोई परिवर्तन नहीं किया जा सका है। ब्राह्मी और देवनागरी लिपि और वेदों की भाषा में जो विशेषता इसकी बनावट, ध्वनि, उच्चारण और व्याकरण में है वैसी विश्व की किसी लिपि और भाषा में नहीं है। हमारी वैदिक लिपियों और वैदिक भाषा का विकास क्लिष्टता से सरलता की ओर हुआ। यही विकास प्रकृति, जीव–जन्तुओं और बुद्धि–चेतना में भी द्रष्टव्य होता है। समस्त भाषाओं और लिपियों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि नवीन भाषाएँ विस्तृत वर्णमाला से संकुचित वर्णमाला की ओर और क्लिष्ट उच्चारणों से सरल उच्चारणों की ओर और संश्लेषणात्मकता से विश्लेषणात्मकता की ओर जा रही है। यह सारा परिवर्तन वैदिक भाषा से–संस्कृत भाषा से ही हुआ है। भाषा वैज्ञानिकों के भाषा विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सृष्टि के करोड़ों वर्षों में संसार की समस्त भाषाओं में अनेक परिवर्तन हुए हैं। उनके अनेक विभाग हो गए और वे अपभ्रष्ट हो गईं। लेकिन वैदिक भाषा और लिपि में कोई ऐसा पविर्तन नहीं हुआ जिससे उनकी वैज्ञानिकता, व्याकरण–बद्धता और शुद्धता में कमी आती। इसकी शुद्धता और वैज्ञानिकता की निरन्तरता बने रहने का कारण वैदिक आर्यों द्वारा लिपि और भाषा के अनेक पक्षों पर निरन्तर सावधानी रखना है। वेदपाठी ब्राह्मणों के स्मरण में छपी हुई संहिताए आज भी पूर्णतः शुद्ध और दोषरहित पाई जाती हैं। यह वैदिक भाषा और लिपि की शुद्धता का सबसे बड़ा कारण है। लेकिन शुद्धता यह इस लिए निरन्तर बनी रही क्योंकि लिपि और भाषा दोनों पूर्ण, शुद्ध और वैज्ञानिक हैं। अपौरुषेयता की जब हम बात करते हैं तो लिपि और भाषा की अपौरुषेयता भी इसके साथ समाहित हो जाती है। किसी लिपि और भाषा की शुद्धता और वैज्ञानिकता के कई आधार है, इन आधारों में लिपि और भाषा की पूर्णतः, अर्थयुक्त होना और वैज्ञानिक नियम के अनुसार होना प्रमुख है। लिपि या वर्णमाला की वैज्ञानिकता और शुद्धता होना उस लिपि व भाषा के मानकीकरण को व्यक्त करता है। यदि वेदों की लिपि एवं भाषा की शुद्धता और वैज्ञानिकता के आधार के मूल बिन्दुओं पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि वेदों की वर्णमाला पूर्ण है। वह न तो कम है न अधिक, परन्तु संसार की अन्य भाषाओं की वर्णमालाएं अस्तव्यस्त और अपूर्ण हैं। उनमें आवश्यक वर्णों का अभाव है और अनावश्यक वर्णों का बाहुल्य है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी, फारसी व अरबी आदि की वर्णमालाओं को देखें तो ज्ञात होगा कि उनमें कुछ उच्चारण कम हैं और कुछ उच्चारण अधिक है। उच्चारण के दोष के कारण यूनान के लेखकों ने 'चन्द्रगुप्त' को 'सैण्ड्राकोटस' और अरबी भाषा वालों ने 'चरक' का 'सरक' लिखा है। अर्थात् अरबी में 'च' वर्ण है ही नहीं। यह लिपि का दोष है। भाषाई और लिपि विकास में 'इ' तरह के दोष वैदिक लिपि और भाषा को छोड़कर विश्व की सभी लिपियों और भाषाओं में है। लिपि और भाषा की मर्यादा विश्व की लिपियों और भाषाओं में ने होने के कारण वैदिक लिपि और भाषा भाषियों के अतिरिक्त सभी लिपियों और भाषाओं में देखने को मिलता है। इस विवेचना से यह ज्ञात होता है कि लिपि और भाषा के सम्बन्ध में जैसी शुद्धता और वैज्ञानिकता वैदिक लिपि देवनागरी व ब्राह्मी में है और वैदिक भाषा में है वैसी किसी लिपि व भाषा में नहीं है।

आदर्श लिपि के विशेष गुण

1– लेखन में एकरूपता – किसी भी आदर्श लिपि के लिए आवश्यक है कि उसका प्रत्येक वर्ण एक ही रूप में

लिखा जाए।

2— ध्वनि एवं लिपि में एकरूपता —

एक आदर्श लिपि में प्रयुक्त वर्णों में ध्वनि व लिपि में एकरूपता होना आवश्यक है। अर्थात् जो बोला जाए वही लिखा जाए और जो लिखा जाए वही बोला जाए।

3—समग्र ध्वनियों की अभिव्यक्ति की क्षमता —

एक आदर्श ध्वनि वह होती है जो समग्र ध्वनियों की अभिव्यक्ति को अंकित करने की क्षमता रखती है। लिपि अनुसंधान कर्ताओं ने अपने अनुसंधान में पाया कि देवनागरी लिपि ही एक मात्र ऐसी लिपि है जो विश्व की लगभग सभी ध्वनियों को अंकित करने की सबसे अधिक क्षमता रखती है। यही कारण है कि वेदों की भाषा को अंकित करने की समग्र क्षमता ब्राह्मी या देवनागरी में पाई जाती है।

4— एक ध्वनि के लिए एक ही चिन्ह का प्रयोग

देव नागरी के अतिरिक्त विश्व की किसी अन्य लिपि में यह विशेषता नहीं है। रोमन, चीनी या अरबी जो विश्व में बहुत बड़ी जनसंख्या द्वारा उपयोग की जाती हैं एक ध्वनि के लिए दो से लेकर तीन—चार अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। और अनेक स्वरों के लिए एक ही स्वर का प्रयोग किया जाता है। एक ध्वनि के लिए अनेक अनेक स्वरों और व्यजनों का प्रयोग उस लिपि की अवैज्ञानिकता और अपूर्णता को व्यक्त करता है। हम सभी जानते हैं कि हिन्दी में प्रत्येक ध्वनि के लिए एक ही स्वतन्त्र—चिन्ह हैं।

5— संदेह से मुक्त होना चाहिए

किसी भी आदर्श लिपि में यह विशेषता होनी चाहिए कि उसमें स्पष्टता हो और वह संदेह से रहित हो। एक संकेत से दूसरे संकेत का भ्रम पाठक या टंकित करने वाले को न नहीं होना चाहिए। देवनागरी में यह विशेषता पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त लेखन में एकरूपता, लिपि का सौन्दर्य, यान्त्रिक लेखन और आशु लेखन में भी उपयुक्त होना आवश्यक है। एक आदर्श लिपि में जितने भी गुण या विशेषताएं होनी चाहिए उपरोक्त तथ्यों से देवनागरी के साथ पूरी तरह फिट बैठते हैं। यह लिपि विकास और भाषा विकास की विवेचना का एक उदाहरण मैंने प्रस्तुत किया जो आधुनिक भाषा व लिपि विकास के लिए आवश्यक जान पड़ते हैं।

इसलिए विकासवाद को समझते—समझाते समय लिपि व भाषा के विकासवाद को भी समझना—समझाना आवश्यक है। वैदिक लिपि व भाषा की शुद्धता व वैज्ञानिकता की मर्यादा में बधी है। स्पष्ट है मर्यादा स्थिर करने के लिए वेदों ने मनुष्य के मुख के समस्त स्थानों और प्रयत्नों का वर्गीकरण करके ही वैदिक वर्णमाला की सृष्टि की थी। उनकी इस वर्णमाला में स्वरों के अतिरिक्त पाँच वर्ग हैं। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग। इन पाँचों में पाँच—पाँच वर्ण हैं। अरबी में प्रयुक्त क़, ख़, ग़, ज़ आदि ध्वनियाँ वेद की अन्य ध्वनियों की अपभ्रष्ट ध्वनियाँ हैं, कोई विशेष वर्ण नहीं। लेकिन अरबी और रोमन अक्षरों से बनने वाले अनेक शब्दों में नुक्ता लगाने की आवश्यकता पड़ती है। नुक्ता लगाते ही देवनागरी में लिखा अक्षर या शब्द का उच्चारण सामान्य से हटकर करना पड़ता है। वेद में अरबी और रोमन लिपि की ध्वनियों की आवश्यकता नहीं है इसलिए देवनागरी में नुक़्ता वाली ध्वनियों को स्थान नहीं दिया गया। लेकिन एक सर्वसामर्थ्य लिपि के लिए आवश्यक है कि दूसरी लिपियों की विशेष ध्वनियों की अभिव्यक्ति के लिए ध्वनि संकेत होना चाहिए।

निष्पक्ष और बिन्दुवार लिपि और भाषा पर कार्य करने वालों को आज यह स्वीकार करना पड़ रहा है कि देवनागरी, ब्राह्मी लिपि, वैदिक भाषा और आज की संस्कृत भाषा, हिन्दी विश्व की सैकड़ों लिपियों और हजारों भाषाओं में श्रेष्ठ, आदर्श और शुद्ध है। विकासवादियों की आधुनिक सोच यदि वैदिक लिपि और भाषा के लिए निष्पक्ष और पवित्र बन जाए तो वैदिक लिपियों और भाषा के सम्बन्ध में उनकी मान्यता और धारणा ही नहीं परिवर्तित होगी अपितु उन्हें अपने विचारों में परिवर्तन के लिए विवश होना पड़ेगा।

विश्व के इतिहासकारों, पुरातत्त्व वेत्ताओं, भाषा व लिपि विदों और आधुनिक विकासवादियों को आर्य, वेद, लिपि, भाषा, वेद की अपौरुषेयता आदि के सम्बन्ध में निष्पक्ष ढंग से व पवित्र बुद्धि से कार्य करने की आवश्यकता है। इससे नव विकासवाद और वैदिक विकासवाद को समझने में नई दिशा प्राप्त हो सकती है।

इति

FIFTH DUTY (ii) : KINDNESS TO ANIMALS

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

There are animals, domestic and wild. The first kind of animals are domesticated for amusement and special help. They are the most cared beings of the world. One can see the dogs living in air-conditioned rooms, dining like sons of the family, and traveling in cars. One can also see the cats, pigeons, parrots, rabbits or other beings, domesticated and very well looked after.

But the animals domesticated for professional help are often exploited. There are cows people get milk from, but without proper fodder, shelter or care. There are oxen people plough fields with, but without proper food, rest or affection. There are horses to carry overloaded professional carts but dealt with cruelty and neglect. There are mares and donkeys used as beasts of burden, but deprived of minimum needs of life, and dealt with utter negligence.

People in general are very harsh to these useful animals. They earn their bread and money with their help, but deprive them of their legitimate share. As to look after the human interests the Human Rights Commissions are working, the Animal Care Commissions should also actively work to look after the plight of the domesticated animals.

The street dogs and stray cows also come within our duties. It is not necessary for us to pat them, but it is essential for us to let them live. The Vedic Culture has mentioned it as an obligatory duty of the house-holders to feed the animals, birds and other beings with mercy and kindness.

The Manusmriti preaches, 'Let the house-holder place on ground some food for dogs, fallen wretches, outcasts, those afflicted with terrible diseases, birds and ants.' Rishi Dayanand, a great exponent of the Vedas also teaches, 'Let the house-holder then give this food to one who is hungry, distressed, diseased, or to dogs, crows and other such creatures.

Thus all helpless beings, men or animals, deserve hospitality and kindness from the house-holders, and it is one of the essential duties of noble persons to look after and care for them,

more or less, with the spirit they do for their own progeny.

NO MEAT PLEASE

Man has two angles of vision regarding food and meals. The one is medical science or Chikitsa Shastra and the other theological jurisprudence or Dharma shastra. The medical science advocates a non-vegetarian diet, with the logic that it contains proteins, fat, Vitamins A & B, and rich calories. Most of the people all over the world, eat meat.

The Indian literature also speaks of eating meat. According to Charak, 'The body develops best by eating meat.' Vagbhatt says, 'For bodily development nothing is better than meat.' But these words are only for body's development and not for the development of the man and mankind.

Scientifically speaking, meat is not essential for man. In proteins, the pulses of Bengal gram, black gram, green gram, read gram, pea, lentil and soyabeen; the dry fruits like almond, cashew nut, ground nut, pistachio nut; and the milk products like cheese are richer than meat. In fats, all nuts, ghee and cheese are much more rich than meat.

The carbohydrates are not present in meat whereas a vegetarian diet has very rich carbohydrates in honey, jaggery, sugarcane, milk, guava, plum, raisins, pear, orange, mango, grapes, date, banana, apple and all nuts.

In Vitamin 'A' the coriander, drum stick, mint, margo, carrot, mango, papaya and betel leaves of a vegetarian diet do not suggest at all for a non-vegetarian diet. In Vitamin 'B' meat is no match for wheat, maize, barely, pulses, beet, cauliflower, ground nut, chestnut, fig, raisins or cow's milk. In Vitamin 'C' there is a long list of vegetables, stums, fruits and leaves, which a non-vegetarian diet lags badly. In calories, too, the nuts are four times and the grains and pulses two times richer than meat.

Thus a vegetarian diet comprising milk, butter, pulses, grains, nuts, fruits, vegetables, stums and leaves is much more rich than a non-vegetarian diet comprising meat, fish and egg. So the people desiring good health should choose a vegetarian diet.

The theological jurisprudence prohibits meat-eating because of the violence it contains. No meat can ever be obtained without committing the act of violence. Since violence cannot be expected of a noble man, and no man committing violence can be regarded as noble, so the noble society is advised not to take meat at all.

Some people present the logic that the deers, goats, cocks, peacocks and the likely animals are only to be eaten by man. But by the same logic it can be asserted that men, women and their children are to be eaten by lions, tigers and wolves! Some others say, if the

animals are not eaten up, they would flood the earth! This is merely a hypothesis. It never so happens. Tell us please, if the human beings go on multiplying and flooding the earth, will you eat them up, too!

Man is the strongest, wisest and the best animal. Violence does not glorify him. So, he should not live on animals. Rather he should live with them. The ferocious animals can undoubtedly be killed by human guards, but only in defence and protection of human society, and never for food.

The animals cannot speak. This does not mean that they cannot feel. They do feel the joy and sorrow as man does. They feel hunger and thirst as man does. They also feel the taste and individual satisfaction as man does. They can kill and eat men as man can kill and eat them. But the difference between man and animals should be gracefully maintained by man.

The Fifth Duty is different from the rest four duties. The earlier duties are towards the Almighty God, the learned scholars, our own parents and children, and the revered pioneers of society. The Fifth Duty, instead, is to the helpless men and speechless animals. So, it needs a more sincere thought and action. It is in its observance that the real manhood, humanity and nobility actually get revealed. So, we must practise hospitality to the helpless and kindness to animals.

गर्भाधान संस्कार

• नर-मादा के संयोग से सन्तान होना
एक प्राकृतिक नियम है।

• पशु-पक्षी-कीट-पतंगों से भिन्न
मनुष्य जाति के लिए चिन्तन करके
इसे परिष्कृत रूप दिया गया और
'एक स्त्री एक पुरुष' का विधान हुआ।

• इसे 'विवाह' की संज्ञा दी गयी,
जो कि सम्पूर्ण संसार में प्रचलित है।

• पति-पत्नी इन्द्रियों के वशीभूत होकर
गर्भ की स्थापना न करलें अपितु
संयम, चिन्तन एवं योजना-पूर्वक करें,
तो उत्तम सन्तान जन्म लेती है;
यह गर्भाधान-संस्कार का विज्ञान है।

• किसी प्रकार सन्तान हो जाए;
उसका हम बाद में सुधार कर लेंगे;
यह सीमित सुधार का तरीका है।

• संयम एवं योजना से गर्भाधान हो;
यह पूर्ण सुधार का तरीका है।

• किसी प्रकार भवन बनाने के बाद
उसे विज्ञान-पूर्वक मजबूत करना;
और मूल निर्माण ही मजबूत करना;
ये दोनों भिन्न-भिन्न फल देते हैं;
ऐसा ही सन्तान-जन्म का विधान है।

• हर परिवार उत्तम सन्तान चाहता है;
किन्तु यह फल चाहने मात्र से नहीं,
विधान का पालन करने से मिलेगा।

• यह लाज-संकोच का विषय नहीं;
वैदिक संस्कृति का विवाह विज्ञान है।

— ✍ आचार्य रूपचन्द्र 'दीपक'

श्रेष्ठ सन्तान का प्रथम सोपान है गर्भाधान संस्कार

– ✍ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

संस्कारों के सम्बन्ध में जो बातें वैदिक वाङ.मय में लिखी मिलती हैं उन्हें अब वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं। एक शताब्दी पूर्व तक विश्व के वैज्ञानिक गर्भाधान, पुंसवन और सीमान्तोनयन जैसे गर्भकाल के वैदिक संस्कारों की महत्ता को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करते थे, लेकिन देव दयानन्द ने जब अपनी संस्कार विधि लिखी और इस विषय पर यत्र, तत्र, सर्वत्र चर्चा होने लगी तो वैज्ञानिकों का ध्यान भी इस ओर गया। आज के वैज्ञानिक खुलकर कहने और मानने लगे हैं कि गर्भ के समय और गर्भकाल में, गर्भ में पल रहे शिशु पर गर्भिणी की सभी तरह की गतिविधियों और व्यवहारों का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। इसलिए जो लोग वैदिक संस्कारों की सूक्ष्म बातों को महत्व नहीं देते थे अब वे भी देने लगे हैं। मुझे लगता है, वैदिक वाङ.मय में वर्णित संस्कारों पर नए सिरे से चर्चा, संवाद और अनुसंधान किए जाने चाहिए। इससे विश्व का सर्वविधि कल्याण हो सकता है। वैदिक दर्शन के अनुसार संस्कारों का आधार 'सूक्ष्म शरीर' को माना गया है, इसी में संस्कार रहते हैं। संस्कारों के अतिरिक्त हमारे विचार, अनुभव, चिन्तन भी सूक्ष्म शरीर में रहते हैं। क्योंकि आत्मा का सीधा सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर के साथ होता है और सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ तब तक जुड़ा रहता है, जब तक वह मुक्त नहीं होती। ऐसी स्थिति में जन्म जन्मान्तरों के जो संस्कार सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहते हैं उनमें से बुरे संस्कारों को पुनरुज्जीवित करना, हमारे सोलह संस्कार ही हैं। संस्कार का अर्थ होता है किसी वस्तु, भाव, व्यक्ति या पदार्थ को शुद्ध करना। जैसे सोने को शुद्ध करके उसे 'कुन्दन' बना दिया जाता है उसी तरह मानव को उसके धरती पर आगमन से पूर्व संस्कार देकर उसे संस्कारित करके सच्चे अर्थों में एक आदर्श या मूल्यपरक मानव बनाने का कार्य गर्भ में रहते हुए किया जाता है। गर्भधारण भी वैदिक संस्कृति में संस्कार है। यह इतना महत्वूपर्ण है कि यदि इसे शास्त्रीय विधि–विधान से किया जाए तो एक सर्वगुण सम्पन्न और निरोगी संतान की नींव पक्की हो जाती है। इसे 'संस्कारों में प्रथम संस्कार के तौर पर नींव की ईंट' कहा जा सकता है। जैसे किसी भवन के निर्माण में नींव का अत्यन्त शक्तिशाली, विधि–विधान, सन्तुलित, निरापद और गहरी होना आवश्यक है, उसी प्रकार सन्तान की नींव के रूप में गर्भाधान संस्कार का अत्यन्त सन्तुलित, विधि–विधान पूर्वक और उत्तम समय देखकर करना चाहिए। इस अंक से आर्य जगत् के यशस्वी विद्वान् डॉ. विक्रम कुमार विवेकी लिखित लेख जो गर्भाधान संस्कार पर आधारित है प्रारम्भ कर रहा हूँ। आशा है पाठकगण लाभ उठाएँगे और अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराएँगे।

—सम्पादक

संस्कारों की नींव सदृश्य है गर्भाधान

प्राचीन ऋषियों, मनीषियों व आचार्यों ने 'गर्भाधान' को एक पवित्र संस्कार के नाम से सम्बोधित किया है। गर्भाधान प्रक्रिया के द्वारा ही सन्तति प्राप्त की जा सकती है। अतः इस अनिवार्य क्रिया को संस्कार मानना उचित है।

गर्भस्य आधानं वीर्यस्थापनं यस्मिन् येन वा कर्मणा तत् गर्भाधानम्।

गर्भ का धारण अर्थात् गर्भ में वीर्य का स्थापन जिस शास्त्रीयविहित विधि के द्वारा किया जाता है, उसे गर्भाधान संस्कार कहते हैं।

गर्भ का निमित्त कारण शुक्राणु व आर्तव है। ये जितने शुद्ध, निरोग, स्वस्थ व शुभ संस्कार युक्त होंगे, सन्तति उतनी ही स्वस्थ व गुणवत्ता से युक्त होगी। सन्तान रूपवान् व गुणवान् होना आवश्यक है। इसलिए आयुर्वेद में माता–पिता को निर्देश दिया गया है कि गर्भाधान से पूर्व वे संयम का जीवन बिताएँ। पौष्टिक शुद्ध व सात्विक आहार ग्रहण करें। वेशभूषा, दृश्यों का दर्शन व मन का चिन्तन स्वच्छ रखें। क्योंकि इन सब का प्रभाव रज–वीर्य व गर्भ पर पड़ता है। जिस प्रकार किसान खेत में हल चलाकर पत्थर, कूड़ा कर्कट आदि

निकालकर, साफ–सुथरा करके उसे उपजाऊ बनाता है और उसमें अंकुरण के योग्य बीजों का ही वपन करता है, उसी प्रकार जो वीर्य गर्भ–स्थापन में सशक्त है व डिम्ब गर्भधारण की क्षमता रखता है उन दोनों के उपयुक्त व विधिपूर्वक संसर्ग से ही गर्भाधान सम्भव है। गर्भाधान का समय दिन न होकर रात मानी गयी है। पत्नी के रजस्वला होने पर, मासिक धर्म के आने पर शास्त्रों में पुत्र–प्राप्ति व पुत्री–प्राप्ति हेतु समागम के अलग–अलग दिन भी गिनाए गए हैं। ये शास्त्रों में द्रष्टव्य है।

ऋग्वेद की निम्न ऋचा में समागम की पद्धति वर्णित है–

तं पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बींज मनुष्याङ्वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेषम्।। (10/85/37)

बृहदारण्यक उपनिषद् में गर्भाधान प्रक्रिया का स्पष्ट उल्लेख है–पति–पत्नी जब गर्भ–स्थापना की इच्छा करें उस समय मुख से मुख मिलकार रति क्रिया करें। शरीर को स्थिर रखकर शुभ चिन्तन के साथ मन में प्रसन्नता व कल्याण कामना रखते हुए परस्पर मिलें। शरीर को स्थिर रखकर शुभ चिन्तन के साथ मन में प्रसन्नता व कल्याण कामना रखते हुए परस्पर मिलें। मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए ही, ऋतुकाल में ही, दोनों सहवास करें –

सं पितरावृत्विये सृजेथाम्। (अथर्व. 1/2/2)

महर्षि दयानन्द के द्वारा जो स्वयं गृहस्थी नहीं थे, इस महत्वपूर्ण विषय का उल्लेख व उद्घाटन अपनी पुस्तकों में करना इस संस्कार की महत्ता व उपयोगिता को जताता है। गर्भाधान विषयक अनेक वैदिक मन्त्रों का उल्लेख संस्कारविधि व गृह्यसूत्रों में हुआ है जिसमें गर्भाधान, गर्भस्थिति, गर्भपोषण, गर्भ–संरक्षण के बारे में संकेत व उत्तम–उत्तम शिक्षाएँ दी गईं हैं। माता–पिता सशक्त व वेगवान् विचारों के द्वारा रज–वीर्य के माध्यम से पुराने बुरे संस्कारों को सामर्थ्यवान बना सकते हैं तथा मनोबल का प्रयोग करते हुए गर्भस्थ शिशु पर उदात्त प्रभाव डाल सकते हैं।

आयुर्वेद ग्रन्थ सुश्रुत इस संस्कार की विस्तृत विचना प्रस्तुत करता है। गर्भाधान करने वाले नर–नारी के आयु के विषय में मध्यम व उत्तम के रूप में दो विकल्प वहाँ उपलब्ध हैं। मध्यम विकल्प के अनुसार स्त्री की आयु कम से कम 16 व 20 तथा पुरुष की आयु 24 व 48 वर्ष है किन्तु ये विकल्प सन्तान–प्राप्ति हेतु गर्भाधान–क्रिया के लिए हैं, कामक्रीड़ा के लिए नहीं। जब से मानव ने मैथुन क्रिया के उपरान्त गर्भाधान से बचने की तरकीबें निकालीं हैं, तब से इस संस्कार ने अपने स्वरूप को खो दिया है। कृत्रिम साधनों से गर्भ ग्रहण से बचाव, गर्भ ठहरने पर दूरबीन प्रणाली से भ्रूण हत्या की अनुज्ञा आदि वैधानिक सुविधाएँ प्रदान करना, रस्सी का एक सिरा है। दूसरे सिरे पर तो उच्छृंखल कामक्रीड़ा, परिणामतः सामाजिक अव्यवस्था, उद्दण्डता एवं एड्स आदि संक्रमणकारी व्याधियाँ हैं जो समाज को नष्ट–भ्रष्ट कर रही हैं। इस लिए वैदिक वांड.मय में इन्द्रिय–निग्रह की परम्परा का समर्थन है। और इस प्रमुख संस्कार के अधिकारी वीर्य स्तम्भन कर सकने वाले तपस्वी पति होते हैं। ऐसे वीर्यवान् व वीर्य–स्थापनकर्ता पति को ही अथर्ववेद की ऋचा ने इस प्रकार उद्बोधित किया है–तू वृषभ के समान बरस सकने वाला पति है, अतः तू ही वधू में गर्भ का आधान कर –

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम्।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रचायै त्वा नयामसि ।।

(अथर्व. 5/25/8)

आश्रम –– जिनमें अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जाय उनको "आश्रम" कहते हैं।

आश्रम के भेद –– जो सत्य विद्या आदि शुभ गुणों का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी; जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये गृहाश्रम; जो विचार के लिए वानप्रस्थ; और सर्वोपकार करने के लिए सन्यासाश्रम होता है; ये "चार आश्रम" कहाते हैं।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

वैदिक धर्म के अनुसार आचरण बनाकर जीवन को सफल बनायें

–✍ मनमोहन कुमार आर्य
देहरादून

महाभारत के बाद वैदिक धर्म का सत्यस्वरूप विलुप्त हो गया था और इसमें अनेक अन्धविश्वास, पाखण्ड एवं मिथ्या परम्परायें सम्मिलित हो गई थीं जिससे आर्य जाति का नानाविध पतन व पराभव हुआ। ऋषि दयानन्द ने वेदों का पुनरुद्धार करने सहित वेद प्रचार करते हुए आर्यसमाज की स्थापना कर वैदिक धर्म को देश देशान्तर में प्रचारित व प्रसारित करने का अभिनन्दनीय कार्य किया। इसके लिए हम ऋषि दयानन्द, उनके गुरु स्वामी विरजानन्द, स्वामी दयानन्द के संन्यास गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी, स्वामी जी के योग–गुरुओं सहित स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, भाई परमानन्द सहित उनके अब तक हुए सभी अनुयायियों को सादर नमन करते हैं। ऋषि दयानन्द को सन् 1839 की शिवरात्रि को बोध हुआ था, तब लोगों के पास सच्चे शिव के सत्यस्वरूप तथा उसकी प्राप्ति कैसे होती है, आदि विषयों का ज्ञान नहीं था। मृत्यु क्यों होती है, मृत्यु पर क्या विजय पाई जा सकती है या नहीं, पाई जा सकती है तो कैसे और यदि नहीं पाई जा सकती है तो क्यों, इन प्रश्नों के उत्तर भी किसी के पास नहीं थे। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने को अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर ऋषि दयानन्द ने अपने माता–पिता व परिवार सहित अपनी जन्म भूमि टंकारा का त्याग किया था और अहर्निश अपने उद्देश्य के प्रति सजग रहकर उसे पूरा करने के लिये तत्पर व गतिशील रहे थे। ऋषि के तप व प्रार्थना को स्वीकार कर ईश्वर ने उन्हें न केवल इन प्रश्नों के उत्तर व समाधान प्रदान किये अपितु इस सृष्टि के अधिकांश अन्य रहस्यों का अनावरण भी किया था। ऋषि का सौभाग्य था कि उन्हें स्वामी विरजानन्द जी जैसे योग्य व अपूर्व आचार्य मिले थे। ऋषि दयानन्द के गुरु विरजानन्द जी को गुरु दक्षिणा में अपने शिष्य से किसी भौतिक पदार्थ की अपेक्षा नहीं थी अपितु वह चाहते थे कि ऋषि दयानन्द वेदज्ञान को जन जन तक पहुचाये, इसका परामर्श व प्रेरणा ही उन्होंने दयानन्द जी को की थी। ऋषि दयानन्द ने जिस ज्ञान प्राप्ति के लिए अपने माता–पिता व घर को छोड़ कर वन, उपवन, पर्वत व स्थान–स्थान की खाक छानी थी, वह उससे कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। ईश्वर का साक्षात्कार भी उन्होंने किया था। कोई मनुष्य अपने जीवन में वेदों का अधिकतम जो ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वह ऋषि दयानन्द प्राप्त कर चुके थे। ऋषि के प्रयत्नों से देश व संसार को पंचमहायज्ञविधि, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, ऋग्वेद – यजुर्वेदभाष्य, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, गोकरुणानिधि, पूना–प्रवचन आदि ज्ञान–सम्पदा प्राप्त हुई। हमारा सौभाग्य है कि हम ईश्वर, जीवात्मा, चराचर जगत, मनुष्य के कर्तव्य, जीवात्मा का लक्ष्य व उसकी प्राप्ति के साधनों आदि को ऋषि प्रदत्त सत्य–ज्ञान के अनुरूप जानते है। हम आश्वस्त हैं कि मृत्यु के बाद हमारा पुनर्जन्म होगा। हम मोक्ष के लिये भी पुरुषार्थ कर सकते हैं। किसी भी ज्ञान, ईश्वरोपासक एवं पुरुषार्थी मनुष्य का मोक्ष हो सकता है और यदि नहीं होगा तो उसका पुनर्जन्म अवश्य श्रेष्ठ व उत्तम होगा। हम पुनर्जन्म लेकर मानव व देव बनेंगे और भावी जन्मों में मोक्षगामी बनकर व ईश्वर का साक्षात्कार कर मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। यदि मोक्ष प्राप्त न भी कर सके तो हम सच्चे मनुष्य व देव बनकर तो मनुष्यता व प्राणीमात्र का कल्याण करने का कार्य कर ही सकते हैं जैसा कि ऋषि दयानन्द व उनके अनेक प्रमुख अनुयायियों ने किया है।

ऋषि दयानन्द ने बोध को प्राप्त होने के बाद सच्चे शिव व मृत्यु की औषधि की खोज की। वेदाध्ययन, वेदाचरण, ईश्वरोपासना, योग, ध्यान, समाधि, सत्याचरण, अपरिग्रह, सात्विक जीवन, परोपकार के कार्य आदि को धारण किया। उन्होंने संसार से अविद्या को दूर करने और विद्या का प्रकाश करने के लिये वेद प्रचार किया। असत्य मान्यताओं का खण्डन तथा सत्य मान्यताओं की स्थापना के लिये जीवन का एक–एक पल व्यतीत किया। मनुष्यों को मनुष्य के कर्त्तव्यों से

परिचित कराया। पंच–महायज्ञों के विधान से परिचित कराया व उनकी विधि बनाकर हमें प्रदान की। उन्होंने ईश्वरोपासना, पंचमहायज्ञों तथा परोपकार व दान आदि के कामों को तर्क व युक्तियों से पुष्ट किया। बताया कि जो मनुष्य ईश्वरोपासना नहीं करता वह ईश्वर के उपकारों के लिए उसका धन्यवाद न करने के कारण कृतघ्न होता है। जो अग्निहोत्र यज्ञ नहीं करता वह वायु, जल, पृथिवी, आकाश आदि में प्रदुषण करने के कारण ईश्वर व अन्य देशवासियों का अपराधी होता है। यज्ञ न करने से मनुष्य को पाप लगता है जिसका परिणाम दुःख होता है। माता–पिता के भी सन्तानों पर असंख्य उपकार होते हैं। उनकी आज्ञा पालन, वृद्धावस्था में उनका पालन व पोषण तथा उनकी आत्माओं को सन्तुष्ट रखना सभी सन्तानों का कर्त्तव्य व धर्म होता है। जो ऐसा करते हैं वह प्रशंसनीय हैं और जो नहीं करते वह निन्दनीय हैं। अतिथि विद्वानों को कहते हैं जो अपने किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं अपितु अपने कर्तव्य, समाज तथा देश का हित करने के लिये स्थान–स्थान पर विचरण करके अविद्या का नाश, विद्या की वृद्धि और लोगों के दुःखों का हरण करते हैं। ऐसे अतिथियों की मन, वचन व कर्म से सेवा करना समाज के सभी मनुष्यों का कर्त्तव्य होता है। ऐसा करने से मनुष्य ज्ञान व सामाजिक दृष्टि से उन्नति करता है। देश व समाज उन्नत व सुदृढ़ होते हैं। ऋषि दयानन्द के जीवन में यह सभी गुण पाये जाते थे। इसी प्रकार से परमात्मा के बनाये पशु व पक्षियों सहित सभी प्रकार के प्राणियों व कीट–पतंगों के प्रति भी दया व करूणा का भाव रखते हुए उनके पोषण व जीवनयापन में सभी मनुष्यों को सहायक बनना चाहिये। ऐसा करके ही हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी होते हैं।

ऋषि दयानन्द के समय में हमारा समाज अनेक प्रकार की अन्धविश्वासों एवं कुरीतियों से ग्रस्त था। ऋषि ने सभी सामाजिक कुरीतियों व परम्पराओं का तर्क, युक्ति सहित वेद के प्रमाणों से खण्डन किया। अशिक्षा को उन्होंने मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु बताया। उन्होंने शिक्षा को मनुष्य का अधिकार व प्रजा को वैदिक शिक्षा प्रदान कराना राजा का कर्त्तव्य बताया। ऋषि के अनुसार वह माता–पिता दण्डनीय होने चाहियें जो अपने बच्चों को राज्य की ओर से संचालित निःशुल्क गुरुकुलों व पाठशालाओं में पढ़ने के लिये नहीं भेजते। ऋषि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन की महिमा को भी रेखांकित किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य से ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग दिखाया। ब्रह्मचर्य विषयक सभी भ्रमों को उन्होंने दूर किया। एक गृहस्थी जो संयम एवं नियमों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, वह भी ब्रह्मचारी होता है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन व आचरण से शिक्षा दी कि प्रत्येक मनुष्य को प्रातः ब्रह्म–मुहुर्त अर्थात् 4.00 बजे जाग जाना चाहिये। वेद मन्त्रों से ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। शौच आदि से निवृत होकर सन्ध्या एवं यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये। सात्विक व शाकाहारी भोजन करना चाहिये। शरीर में विकार उत्पन्न करने वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। दुग्ध, घृत, मक्खन, फल सहित शुद्ध अन्न का सेवन करना चाहिये। आलस्य का त्याग कर पुरुषार्थी होना चाहिये। महत्वाकांक्षी न बन कर देश व समाज के हितों का ध्यान रखते हुए जीवनयापन करना चाहिये। मनुष्य को ईश्वरभक्त एवं देशभक्त होना चाहिये। उसे किसी प्रकार का भेदभाव, अन्याय व शोषण किसी के प्रति नहीं करना चाहिये। पिछड़े, दलितों व पात्र लोगों को शिक्षा व सहायता देकर ऊपर उठाना चाहिये। सबको सदाचार व वेद की मान्यताओं से परिचित कराना चाहिये और अविद्या का खण्डन निर्भीकता से करना चाहिये। समाज में यदि अविद्या होगी तो इससे सभी को दुःख प्राप्त होता है। ऋषि दयानन्द ने यह भी बताया कि वेद से इतर जितने भी मत मतान्तर हैं उन सबमें अविद्या विद्यमान है। यह अविद्या दूर होनी चाहिये। इसके लिये उन्होंने न केवल सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्ध के चार समुल्लास लिखे अपितु अपने जीवन में उपदेश व व्याख्यानों के माध्यम से प्रचार करते हुए भी मत–मतान्तरों की अविद्या व असत्य का पुरजोर खण्डन किया। ऋषि दयानन्द ने हमें इतना कुछ दिया है कि हम उसे सम्भाल पाने में असमर्थ हैं। हम पुरुषार्थ करें तो वेदों के विद्वान् व ऋषि तक बन सकते हैं। इसके लिये ऋषि दयानन्द ने हमें सभी साधनों से परिचित कराया है व सभी साधन उपलब्ध कराये हैं।

ऋषि दयानन्द के समय में हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम था। अंग्रेजों से पूर्व देश के कुछ भाग मुस्लिम

शासकों के पराधीन रहे। इन सभी ने हमारे पूर्वजों पर अमानवीय अनेक जघन्य अपराध किये। हमें इनसे शिक्षा लेकर अपनी उन सभी बुराईयों को दूर करना है जिससे हम पुनः पराधीन न हों। पराधीनता का कारण अविद्याजनित मत–मतान्तर, सामाजिक भेदभाव वा जन्मना जातिवाद, मिथ्या परम्परायें एवं वेदाचरण के विपरीत आचरण करना था। शोक है कि यह सब कारण आज भी हिन्दू व आर्यों में विद्यमान हैं। ऋषि दयानन्द ने ही देश की आजादी का मार्ग सत्यार्थप्रकाश व आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में सुझाया था। आजादी प्राप्त होने में ऋषि दयानन्द के अनुयायियों का सबसे अधिक योगदान है। यदि ऋषि दयानन्द ने आजादी की प्रेरणा न की होती और आर्यसमाज व उसके अनुयायियों ने कर्तव्य भावना से आजादी में सक्रिय भाग न लिया होता, तो हमारा अनुमान है कि शायद हम आजाद न हुए होते। इस अवसर पर हमें पं0 श्यामजी कृष्ण वर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, शहीद भगत सिंह के देश को आजाद कराने के लिए किए गए कार्यों व बलिदानों को भी स्मरण करना चाहिये। हमें स्मरण है कि जब शहीद भगत सिंह लाहौर से लाला लाजपतराय की हत्या का बदला लेकर कलकत्ता पहुंचे थे तो वहां उन्हें आर्यसमाज मन्दिर में आश्रय मिला था। देश को आजादी की प्रेरणा कर आजादी दिलाने वाले महर्षि दयानन्द एवं आर्यसमाज के योगदान को भी हमें स्मरण करना चाहिये।

सारा संसार ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदत्त सत्य ज्ञान के लिये उनका ऋणी है। देश चाहे भी तो उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता। उनके बताये मार्ग का अनुकरण व अनुसरण कल्याण का मार्ग है और मत–मतान्तरों की शिक्षाओं में निमग्न रहना मनुष्य को ईश्वर को प्राप्त न कराकर प्रवृत्ति व लोभ के मार्ग पर ले जाता है जहां कर्म फल भोग सुख–दुःखादि के अतिरिक्त कुछ नहीं है। पुनर्जन्म भी इससे सुधरता नहीं अपितु हमारी दृष्टि में बिगड़ता ही है। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है उसे मांसाहार, मदिरापान, नशा, घूम्रपान, अधिक भोजन तथा धन सम्पत्ति का संग्रह वा परिग्रह छोड़कर अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में ही यथोचित पुरुषार्थ करना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने वेद व वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया। वेद व वैदिक धर्म सर्वांगीण धर्म एवं आचार शास्त्र है। इसकी शरण में जाने व वेदों को अपनाने से ही मनुष्य जीवन का कल्याण होता है तथा मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का अधिकारी बनता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों के सत्यस्वरूप का प्रकाश किया और वेदज्ञानयुक्त सत्यार्थप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थ लिख कर वैदिक धर्म का पालन करने में लोगों का का मार्गदर्शन किया। वैदिक धर्म को अपनाकर ही मनुष्य के जीवन की सर्वांगीण उन्नति होती है। ईश्वर व सृष्टि विषयक सभी रहस्यों का सत्य व यथार्थ ज्ञान होता है। हमें जीवन को वैदिक धर्म के अनुसार व्यतीत करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त होकर उसे सफल करना चाहिये। ओ३म् शम्।

हंस बगुला बने माल खा कर चले,
टीका चंदन संभलकर लगा कर चले।

आज फिर कोई सीता हरी जाएगी,
भेष रावण के जैसा बना कर चले।

इस जमाने में अब वो मोहब्बत कहाँ,
साथ लैला से मजनू निभा कर चले।

प्यार जिनको रहे बांटते उम्र भर,
मेरे अपने ही दिल को जला कर चले।

बेवफा पर हमारा असर ना हुआ,
जख्म गहरा था हम तो दिखाकर चले।

है भलाई इसी में सुधर जाओ तुम,
फर्ज अपना था हम तो बता कर चले।

विश्व का था सिकंदर विजेता यहाँ,
'धूल' मिट्टी में उसको दबा कर चले।।

–✍ काली चरण सक्सेना
शाहजहांपुर

क्रान्तिकारियों के प्रेरणा स्रोत प्रखर राष्ट्रभक्त पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा

संसार का इतिहास साक्षी है कि क्रान्ति की ज्वाला पहले किसी भी समाज के सर्वोत्तम मस्तिष्कों में जन्म लेती है और फिर धीरे धीरे पूरे समाज को प्रभावित करती है। भारतीय सन्दर्भ में इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं, प्रखर ***राष्ट्रभक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा***। जिन्हें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में क्रान्ति की पाठशाला के नाम से जाना जाता है और जिनका सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित रहा पर दुर्भाग्य इस देश ने उन्हें वह मान सम्मान नहीं दिया, जिसके वे अधिकारी थे। 4 अक्टूबर 1857 को गुजरात की कच्छ रियासत के माण्डवी में कृष्ण भानुशाली एवं गोमतीबाई के यहाँ जन्में श्याम जी की प्रारम्भिक शिक्षा उनके गाँव माण्डवी में और उच्च शिक्षा भुज में हुयी। 1875 में उनका विवाह मुम्बई के एक बड़े व्यापारी सेठ छबीलदास लालूभाई की पुत्री भानुमती से सम्पन्न हुआ। जब ओर अधिक उच्च शिक्षा के लिए वे मुम्बई गए तो वहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आये और उनसे अत्यंत प्रभावित हुए। स्वामी जी के अपने ऊपर पड़े प्रभाव के चलते उन्होंने वैदिक साहित्य का गहन अध्ययन किया और शीघ्र ही संस्कृत और वेद–वेदांगों में पारंगत हो गए। वे महर्षि द्वारा मुम्बई में स्थापित भारत के प्रथम आर्य समाज के प्रधान बनाये गए। वैदिक ज्ञान पर उनका इतना अधिकार हो गया कि वो वैदिक धर्म और दर्शन के ऊपर सम्पूर्ण भारत में प्रवचन देने लेगे जिसने उन्हें एक जाना माना नाम बना दिया। वे पहले गैर–ब्राह्मण थे जो अपनी विद्वता के कारण काशी के विद्वान् पण्डितों द्वारा पण्डित की उपाधि से सम्मानित किये गए।

उनकी विद्वता से प्रभावित होकर आक्सफोर्ड में संस्कृत के प्रोफेसर मोनिअर विलियम्स ने उन्हें अपने सहायक के रूप में कार्य करने के लिए आमंत्रित किया। वे 25 अप्रैल 1879 को इंग्लैंड पहुंचे और संस्कृत के असिस्टेंट प्रोफेसर के तौर पर अपनी सेवाएँ दीं। बाद में उन्होंने टेम्पल इन में प्रवेश लिया और भारत के पहले बार–एट–ला बने। 1885 में वे भारत लौट आये और मुम्बई उच्च न्यायालय में वकालत प्रारम्भ की। कालांतर में उन्होंने कई कार्य किये और रतलाम, अजमेर और जूनागढ़ जैसी कई रियासतों के दीवान रहे। 1897 के आस पास एक ब्रिटिश एजेंट के साथ उनके कटु अनुभव ने ब्रिटिश राज्य के प्रति उनके मन में नफरत की ज्वाला को और भड़का दिया और उसके बाद उनका पूरा जीवन अंग्रेजी शासन के खिलाफ लड़ते ही बीता। वो लोकमान्य तिलक की गरम नीति से अत्यंत प्रभावित थे और इस कारण उनके साथ अत्यंत मधुर सम्बन्ध बनाकर उन्होंने खुद को राष्ट्रीय आन्दोलन में जोड़ दिया। 1897 में पुणे में प्लेग के दौरान भारतीयों पर किये गए बर्बर अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने पर जब तिलक को जेल भेज दिया गया तो श्याम जी को लगा कि यहाँ रह कर वो उतने स्वतंत्र भाव से कार्य नहीं कर सकते जितना बाहर रह कर। इस कारण अपने शानदार कैरिअर को लात मारकर उन्होंने देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने का मार्ग चुना और उस पर चल पड़े।

1899 में वे एक बार फिर से लन्दन पहुंचे और अपने ज्ञान, प्रतिभा, कौशल, संघर्ष शक्ति और साधनों के कारण देखते ही देखते ब्रिटेन में भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे युवाओं के एकछत्र सेनापति बन गए। उन्होंने लन्दन से एक मासिक पत्रिका 'इंडियन सोश्योलाजिस्ट' निकाली जो क्रान्ति के विचारों का वाहक बन गयी। 1905 में उन्होंने भारत पर ब्रिटिश सरकार की दमन नीतियों के विरुद्ध 'द इंडियन होमरूल सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना की। वे जितना कमाते थे, उतना ही देश पर लुटाते थे। प्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर के प्रसिद्ध कथन कि आक्रमण के विरुद्ध संघर्ष ना केवल न्यायोचित है बल्कि आवश्यक भी, को अपना मन्त्र मानने वाले श्याम जी ने उनकी समाधि पर श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए एक ऐसे केंद्र की स्थापना का संकल्प किया जो ब्रिटेन में भारतीय क्रांतिकारियों का गढ़ बने और जहाँ से ऐसे सेनानी

निकले जो स्वयं को देश के लिए समर्पित कर दें।। अपने इसी संकल्प के फलस्वरूप 1905 में ही पण्डित श्यामजी ने लंदन में ***'इंडिया हाउस'*** नामक छात्रावास की स्थापना की। जिसके उदघाटन के अवसर पर लाला लाजपत राय, दादाभाई नौरोजी और मैडम भीका जी कामा जैसे लोग उपस्थित थे। यह भवन शीघ्र ही भारतीय क्रांतिकारियों और नेताओं का गढ़ बन गया। 50 कमरों के इस छात्रवास में भारत के अनेक क्रांतिकारी पले और बढ़े। जिनमें विनायक दामोदर सावरकर, गणेश दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, वी . वी . एस . अय्यर, आसफ अली, सिकन्दर हयात खान और ब्रिटिश भूमि पर शहीद होने वाले पहले भारतीय मदनलाल धींगरा आज भी हमारे ह्रदयों में बसे हुए हैं। कुछ क्रांतिकारी वहाँ रहते थे और कुछ नियमित आया जाया करते थे।

अपने पैसों से श्यामजी ने क्रांतिकारियों को जीवनयापन, शास्त्र और शस्त्र आदि की खरीद में सक्रिय सहायता दी। उन्होंने महाराणा प्रताप, शिवाजी, महारानी लक्ष्मीबाई और महर्षि दयानन्द के नाम से विदेशों में अध्ययन के इच्छुक भारतीय छात्रों के लिए अनेकों छात्रवृत्तियाँ स्थापित की पर इसे पाने की शर्त यही थी कि इन छात्रवृत्तियों को लेनेवाले छात्र लंदन से लौटकर अंग्रेज सरकार की चाकरी नहीं करेंगे। इनके पीछे उद्देश्य ये था कि अधिक से अधिक भारतीय छात्र विदेशों में आकर देश की आजादी की लड़ाई को आगे बढायें। ये छात्रवृत्तियाँ अनेक प्रान्तों के नवयुवकों को मिलीं, उनमें मुसलमान भी थे। श्यामजी की छात्रवृत्तियां का लाभ वीर सावरकर, भाई परमानन्द, लाला हरदयाल, बिपिनचन्द्र पाल, मदनलाल ढींगरा जैसे क्रान्तिवीरों ने उठाया और अंग्रेजों को उनके घर में घुसकर चुनौती दी। बाल गंगाधर तिलक जैसे लोग श्यामजी को पत्र भेजकर छात्रों के नाम प्रस्तावित करते थे। अपने पत्रकों के जरिये श्याम जी ने ब्रिटेन में जहाँ एक तरफ भारतीयों के मन में देश की आजादी की लौ जलाई, वहीं दूसरी तरफ अंग्रेजों के मन में भय उत्पन्न कर दिया। उनके द्वारा लिखे गए ये पत्रक इतिहास की अमूल्य निधि हैं जो बताते हैं कि देश की स्वतंत्रता के लिए उनके मन में कितनी पीड़ा थी।

भारत के आजादी के लिए अपने अपने तरीकों से कार्य कर रहे विभिन्न लोगों से श्याम जी के सम्बन्ध मधुर थे पर कांग्रेस को लेकर उनके मन में अप्रसन्नता का भाव था। 1899 में दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए जब गाँधी जी ने अपनी आजादी की लड़ाई लड़ रहे बोअर्स के विरोध में अंग्रेजों का साथ दिया तो श्याम जी को अत्यंत क्लेश हुआ। उन्होंने सार्वजनिक तौर पर कहा कि एक गुजराती और एक भारतीय के रूप में मैं शर्मिंदा हूँ कि अपने सम्मान और आजादी के लिए संघर्ष कर रहे बोअर्स के विरुद्ध मोहनदास करमचन्द गाँधी ने साम्राज्यवादी अंग्रेजों का साथ दिया है। गाँधी जी से उनके सम्बन्ध बाद में और भी कटु हो गए थे जब गाँधी जी भारत लौट कर आजादी की लड़ाई के सबसे बड़े सेनानी के तौर पर जाने जा रहे थे और मदनलाल धींगरा द्वारा कर्जन वायली की हत्या का समर्थन करने पर गाँधी जी ने श्याम जी से सम्बन्ध विच्छेद कर लिए थे।

श्याम जी की गतिविधियाँ को लेकर ब्रिटिश सरकार के मन में संदेह गहराता जा रहा था और वो उन पर हर घडी नजर रखने लगी थी। ऐसे में इण्डिया हाउस का काम वीर सावरकर के हाथों में छोड़ कर श्याम जी ने अपना मुख्यालय पेरिस बना लिया और ब्रिटिश सरकार की आँखों में धुल झोंक कर 1911 में फ्रांस चले गए और वहीं से मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अनवरत प्रयास करते रहे। उनकी गतिविधियों से घबरा कर ब्रिटिश सरकार ने फ्रांस पर उन्हें गिरफ्तार करने और प्रत्यर्पित करने का दवाब डाला पर श्याम जी पहले ही परिस्थिति को समझ 1914 में जेनेवा चले गए और वहीं से गुप्त रूप से क्रांतिकारियों की सहायता करते रहे।

अनवरत प्रवास और कठिन जीवन से उनके शरीर को तोड़ दिया था और परिणामतः भारत माता का यह वीर सपूत माँ के आञ्चल से बहुत दूर जेनेवा में 30 मार्च 1930 को चिरनिद्रा में सो गया और साथ ही बुझ गया क्रांति के पथ पर न जाने कितने ही क्रान्तिवीरों का पथप्रदर्शन करने वाला दीप। वो भारत माता को पराधीनता के बेड़ियों से मुक्त देखने के लिए दुनिया में नहीं रहे और उनका अंतिम संस्कार भी उनकी मातृभूमि से बहुत दूर जेनेवा में ही हुआ। उनकी मृत्यु के समाचार को अंग्रेजी सरकार ने दबाने का प्रयास किया पर इसमें सफल न हो सकी। उनसे विरोध के चलते कांग्रेस और गाँधी जी ने इस महान् हुतात्मा को

श्रद्धाञ्जलि देना भी गवारा न किया। पर लाहौर जेल में अमर क्रांतिकारी भगत सिंह और उनके साथियों ने देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले इस हुतात्मा को भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। लोकमान्य तिलक के पत्र मराठा ने उनकी स्मृति में लेखों की एक श्रृंखला प्रकाशित कर उन्हें श्रद्धापुष्प अर्पित किये। उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही साये की तरह उनका साथ निभाने वाली उनकी पत्नी भानुमती का भी निधन हो गया और उनका अंतिम संस्कार भी जेनेवा में ही कर दिया गया। पर आजादी के बाद उनकी उपेक्षा का सिलसिला अनवरत जारी रहा और कांग्रेसी सरकारों ने उनकी स्मृति को अक्षुण बनाये रखने के लिए कोई प्रयास नहीं किया और न ही श्याम जी और उनकी पत्नी की इच्छा के अनुरूप उनके अस्थिकलश को भारत लाने का कोई प्रयास किया।

अनेकों प्रयासों के फलस्वरूप, स्वतंत्रता प्राप्ति के पूरे 51 वर्ष बाद उनकी स्मृति में एक डाक टिकट जारी किया गया। भुज में उनकी स्मृति में क्रांतिगुरु श्यामजी कृष्ण वर्मा कच्छ विश्वविद्यालय भी स्थापित किया गया है। उनकी मृत्यु के 73 वर्ष बाद एवं स्वतंत्रता के पूरे 55 वर्ष बाद 22 अगस्त 2003 में गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री एवं वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के प्रयासों से श्याम जी और भानुमती जी की अस्थियाँ भारत लायी गयीं। राज्य सरकार ने इन अवशेषों को उनके जन्मस्थान माण्डवी तक ले जाने के लिए वीराञ्जल यात्रा निकाली और मार्ग में पड़ने वाले 17 जिलों के प्रशासन को इस यात्रा को सफल बनाने और इसमें जन भागीदारी कराने के लिए निर्देशित किया गया। माण्डवी में ये अस्थियाँ श्याम जी की स्मृति में बने भव्य स्मारक में स्थापित की गयी और वर्षों बाद ही सही, माँ का उसके योग्य बेटे से मिलन हुआ। भारत माता के इस महान् सपूत श्याम जी को कोटिशः नमन एवं विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्।

(अथर्व ५.३०.७)

उन्नत होकर आगे बढ़ना हर जीव (मनुष्य) का धर्म है।

एक कोशिश

भावना का सरोवर है सूखा हुआ,
जागरण गीत कोई लुभाता नहीं।
अब व्यथाएँ कहेगा कोई किसलिए,
अब जटायु नजर कोई आता नहीं।
चहचहाहट थमी है, थमी बाँसुरी,
मन की वीणा कोई गीत गाती नहीं,
दूर तक है अँधेरा ये फैला हुआ,
दामिनी कैद अब जगमगाती नहीं।
अब निगाहों को चंचल हिरण की तरह,
मॉल बाजार होटल लुभाने लगे।
अब सुदामा के किस्से पुराने हुए,
अब तो बेटे भी नजरें घुमाने लगे।
आपका सत्य है आप ही के लिए,
साथ कोई अदालत भी जाता नहीं।
भावना का सरोवर है सूखा हुआ,
जागरण गीत कोई लुभाता नहीं।
अब विदा हो गयी है दया गाँव से,
अब कुटिलता यहाँ न्याय करने लगी,
अब रिहा हो गया सरगना पाप का,
निर्भया न्यायधीशों से डरने लगी।
व्याकरण फायदे का है लागू हुआ,
नीतियों की कथाएँ पुरानी हुई,
भैंस उसकी है लाठी जो लेकर खड़ा,
खुशबुएँ फूल की आसमानी हुई।
अब उदासीन अलग किनारे खड़ा,
अब उसे पंच कोई बनाता नहीं।
भावना का सरोवर है सूखा हुआ,
जागरण गीत कोई लुभाता नहीं।
अब गले तुम किसी को लगाना नहीं,
पास हरगिज किसी के भी जाना नहीं,
मौत भूखी शहर में भटकने लगी,
हाथ अब तुम किसी से मिलाना नहीं।
अब न रोटी के चर्चे न जीवन सुखद,
कुर्सियों पर जमी है सभी की नजर,
खेल सबका है अपना सभी ताक में,
क्या कहूँ मैं कहाँ कैसे किसका असर।
राह धुँधली बहुत ठोकरों से भरी,
है पथिक सच्चा जो, लड़खड़ाता नहीं,
भावना का सरोवर है सूखा हुआ,
जागरण गीत कोई लुभाता नहीं।

— राजेश जैन 'राही' रायपुर

कहानी

सच्ची भक्ति

✍ डॉ अनुपमा श्रीवास्तव

"उफ दिमाग खराब हो गया जी! बहुत गर्मी है! अगस्त में इतनी गर्मी पड़ती है यहाँ! अपने यहाँ तो मौसम ठीक हो गया। मेरा छोटा सा बच्चा तो तड़प के रह गया।" मीना बार–बार सखाराम को शिकायती लहजे में कहती, फिर उसकी तीखी नजरों को देख कर चुप हो जाती। बच्चे ने भी रो–रो कर आफत मचा रखी है। दो महीने का ही तो है, और अपने जीवन की पहली यात्रा भारतीय रेल के स्लीपर क्लास में कर रहा है। सखाराम ने मीना को बहुत मना किया था कि अभी तो बच्चा दो महीने का ही हुआ है, अगले साल चलेंगे, पर मीना मानने को तैय्यार ही नहीं थी, "ना जी! भोले बाबा को बोल कर आई थी, बच्चा होते ही पहले सावन दर्शन करने आउंगी। ना गए तो कोई अपशकुन ना हो जाए। अठ्ठारह साल बाद बेटा हुआ है," और रुलासी होते हुए बोली, "बाँझ का कलंक हटा हैं माथे से।" और फिर रोने ही लगी।

पिछले साल जनवरी में मीना अपनी बड़ी बहन के साथ काशी विश्वनाथ के दर्शन करने आई थी, वहीँ उसने अपनी डूबती आस को बाबा के सामने रखा था और बाबा ने उसकी खाली झोली भर दी। अब उसकी बारी थी अपनी मन्नत को पूरा करने की, वो बाबा से कह कर आई थी कि अगर औलाद हुई तो वो पहले सावन में दर्शन करने आएगी और इक्यावन किलो दूध चढ़ायेगी। वापस आ कर सखाराम को बताया तो उसने उस समय तो कुछ न बोला, क्योकि उसने औलाद की आस छोड़ ही दी थी, "तिरालिस साल में माँ बनना तो लगभग असम्भव ही है।" डॉक्टर भी जवाब दे चुका है, पर 'ईश्वर बड़ा कारसाज है।' वो कब क्या करेगा, किसी को पता नहीं।

"कब पहुचेंगे जी...? अब तो बैठा ही नहीं जा रहा।" मीना ने पसीना पोछते हुए सखाराम से पूंछा।

"दो घंटे लेट हो गई है, दोपहर के एक तो बज जायेंगे।" सखाराम धीमें स्वर में बोला।

"नाराज हो?"

"नहीं रे! पागल है क्या? तेरे लिए तो ये सखाराम कुछ भी करेगा।" और उसने बड़े प्यार से अपनी आँखे झपका दी।

"बाल पक गए, पर आशिकी ना गई तुम्हारी।" और मीना ने अपना सर झटक दिया। तभी बच्चा रोने लगा, "बच्चा तो बहुत परेशान हो गया।" उसने उसका मुंह आँचल में छिपा दिया।

गाँधीनगर में अक्षरधाम के बाहर एक छोटी सी गुमटी लगाता था सखाराम। पांच भाई और तीन बहन हैं। सबका घर भरा–पूरा है, सिवाय सखाराम का। खूब अवहेलना मीना को मिलती थी। जब पानी सर से ऊपर हो गया तो वो मीना को लेकर माउंट आबू आ गया और पिछले दस साल से यहीं रह रहा है। जीवन यहाँ मुश्किल है, जब पीक टाइम होता है तो ज्यादा कमाई हो जाती है वरना ईश्वर भरोसे सब चलता है। यहाँ किराया भी देना है, गाँधी नगर में तो कम से कम अपना घर था। मीना भी सिलाई का काम करती है, उससे बहुत मदद हो है।

"लगता है, स्टेशन आने वाला है। चलो सामन समेट लो।" मीना ने खिड़की से बाहर झांकते हुए कहा।

भैया स्टेशन आने वाला है क्या ?" सखाराम ने पास बैठे यात्री से पूछा।

"हां! बस आने वाला है।"
"जय हो भोले बाबा की।" मीना की जैसे सारी थकान काफूर हो गई।
सार्वजनिक शौचालय में स्नान करके दोनों मंदिर के निकल लिए। स्टेशन के बाहर ऑटो वाले से किराया पुछा, "सौ–सौ रूपए लगेगा भाई।"
"अरे! लूट मची है क्या? इतनी सी दूरी के दो सौ रूपए लोगे।" मीना ने घूरते हुए बोला।
"इतनी सी दूरी! पैदल चली जाओ। कुछ भी नहीं देना पड़ेगा।" कहते हुए ऑटो वाला आगे चला गया। फिर किसी तरह वो मंदिर पहुंचे, तो लाइन देख कर दोनों के होश उड़ गए, "भैया कितनी लम्बी लाइन है? कब दर्शन हो पायेंगे?" सखाराम ने लाइन में खड़े एक युवक से पूछा।
"कम से कम सात–आठ घंटे तो लगेंगे। वो तो सोमवार नहीं है, वरना कहो पूरा दिन ही लग जाता।"
"हे भगवन! मेरा बच्चा तो सूख गया।" मीना परेशान होते हुए बोली।
"दूध भी तो लेना है। अरे पांच किलो मान लेती, इक्यावन किलो मानने की क्या जरुरत थी।" सखाराम झल्लाते हुए बोला।
"सुनो पंडित जी को फोन करो। उन्होंने कहा था जब आना तो बताना।"
"थोडा मंदिर के पास तो पहुँच जाए।"
"ठीक है।" कहते हुए मीना बच्चे को आँचल में छिपा लेती है।
चटक धूप कम हो गई है, सूरज भी ठंडा हो गया है। मीना एक चबूतरे पर बैठी है और सखाराम पंडित से बात कर रहा है। दोपहर से आठ बार लगा चुका, "अभी आता हूँ। अभी आता हूँ।" कहकर फोन काट देता है, पर अभी तक आया नही है।
"सुनो अब दूध ले लो। कहीं खत्म ना हो जाये।" मीना ने सखाराम से कहा।
"कुछ नहीं खत्म होगा, भाभी जी। सावन में बनारस में दूध की भरमार रहती है।" दर्शन की लाइन में लगे–लगे उस युवक को सखाराम ने छोटा भाई बना लिया और मीना उसकी भाभी बन गई। वो बाबा के दर्शन करने जबलपुर से आया है।
थोड़ी देर बाद पंडित ढूंढते–ढूंढते आ गया। मीना उसको देखते ही उसकी तरफ लपकी और झट से पंडित जी के पैर छु लिए, "पंडित जी! मैं मीना, भोलेबाबा के आशीर्वाद से बेटा हो गया।"
"बाबा के दरबार से कोई खाली नहीं लौटता। मैं तो बहुत व्यस्त हूँ, ये लड़का आपको दर्शन करवाएगा।" इतना कह कर वो जाने लगा, "और हाँ, इसकी दक्षिणा अलग लगेगी और कितने का प्रसाद लेना है वो भी इसे बता देना। जहाँ से कहे वही से प्रसाद लेना। अन्दर बहुत लूट है, अंजान जान कर और लूटेंगे।"
"अरे पंडित जी दूध कहाँ से ले? ये तो बता दीजिये।" सखाराम चिल्लाया।
"ये लड़का सब दिलाएगा।" कह कर पंडित जी चले गए।
"इसके कहने पर तू यहाँ आई।" सखाराम मीना पर भड़का।
"बिल्कुल नहीं बाबा से मिलने आई हूँ। हफ्ते भर से चिल्लाये जा रहे हो, जिसने घर भर दिया, उसको धन्यवाद ना दूँ।" और रोने लगी।
"तू तो बात–बात पर रोने लगती है। चल मान जा। अब दूध ले लेते है।"
"वो गेट दिख रहा है। वहां मिल जाएगा। चौराहे के पार।" उस लड़के ने तपाक से बोला, "कितना लेना है?"
"इक्यावन किलो।"
"पागल हो क्या? इतना दूध अन्दर थोड़े जाएगा। एक किलो चढ़ा दो और पचास किलो का पैसा पंडित को दे देना, वो तुम्हारे नाम से बाद में चढ़ाता रहेगा।"
"ऐसे थोड़े ना होता है। हम अपने हाथ से चढ़ाएंगे।" सखाराम कड़ी आवाज में बोला।
"दूध की नदी बहाओगे क्या? कहाँ–कहाँ से चले आते है।" मुंह बनाते हुए वो लड़का किनारे जा के खड़ा हो गया।

"वैसे सही कह रहा है लड़का! इतना दूध अन्दर कैसे ले जाओगे? अन्दर बहुत भीड़ होती है, पैर रखने की भी जगह नहीं होती। यहीं देख लो इंसान पर इंसान चढ़ा है।" आगे खड़े दर्शनार्थी ने कहा।
"क्या बोलू भाई? इस पागल की मनौती है।" सखाराम मीना को घूरता हुआ बोला। वो लड़का भी इधर–उधर हो गया।
"सुनो! अब क्या करेंगे?" मीना ने सखाराम से पूंछा।
"सामने दूधवाले की दूकान है शायद। उससे पूछ कर आता हूँ।
थोड़ी देर बाद सखाराम ग्यारह–ग्यारह किलो के दो बड़े कैन ले कर आ गया।
"मिल गया क्या?" मीना ने पूंछा।
"हां। लूट मची है यहाँ तो मीना। पानी मिला दूध सौ रूपए किलो दे रहे है। पच्चीस सौ रूपए निकाले थे दूध के लिए। सो मैंने इक्कीस किलो दूध ले लिया। बाकी चार सौ ये भाई लेगा, दूध अन्दर तक पहुँचाने का। भाई का बर्तन है, इसलिए। वरना पच्चीस सौ रूपए बर्तन के जमा करने को कह रहा था।"
"पन्नी में ले लेते। चार सौ फालतू में दिए। हमे तो इक्यावन किलो ही चढ़ाना है।"
"दे पैसा, ले आऊ।" सखाराम ने झिड़कते हुए कहा।
"दे तो दिया सब, अब कहाँ है?"
"फिर दूधवाला रिश्तेदार तो है नहीं कि फ्री में दे दें।" तभी किसी की बहुत तेज से चीखने की आवाज आने लगी और एक बाइक सवार बहुत स्पीड में सामने से भागा। क्या हुआ? किसी को कुछ भी समझ नहीं आया, कुछ दूर पर एक लड़की सड़क पर तड़पती हुई दिखी। वो दर्द से चिल्ला रही है और मदद के लिए इधर–उधर भाग रही है। सखाराम उस लड़की की तरफ बढ़ा, उसे देखते ही समझ में आ गया कि किसी ने उसके मुंह पर एसिड डाल दिया है। माजरा समझते ही सखाराम ने उस लड़के को पुकारा जो दूध की कैन लिए मीना के पास खड़ा था, "कैन खोलो भैया और दूध इसके चेहरे पर डालो।"
"क्यों? मैं नहीं डालता। पुलिस आती होगी।"
उस लड़के ने पीछे हटते हुए कहा। सखाराम ने उससे कैन ली और ढक्कन खोल कर उस लड़की पर धीरे–धीरे दूध डालने लगा। दूध ठंडा था। लोग वहा इकठ्ठे होने लगेय कोई विडियो बनाने लगा, तो कोई चच्च! च्च्च! करके अपना दर्द दिखाने लगा। तो कोई 'क्या हुआ, क्या हुआ?' पूछ रहा है। पर न कोई लड़की के पास आ रहा है और ना ही मदद कर रहा है। सब दूर से तमाशा देख रहे है। ये वही लोग है जो बाबा के दर्शन को घंटो लाइन में लगे है। दूसरा तीर्थात्री भी सखाराम की मदद के लिए आ गया और दूसरे कैन से दूध डालने लगा। जल्द ही पुलिस आ गई और उसने एम्बुलेंस को फोन लगाया और लड़की के मोबाइल से उसके घर वालो को।
दोनों कैन खत्म हो चुके है। वो लड़की अभी भी तड़प रही है। एम्बुलेंस आ गई और उस लड़की को अपने साथ ले गई। सखाराम ने उसे एम्बुलेंस में लेटाया और एम्बुलेंस आवाज करते हुये चली गई। भीड़ छटी, तो सखाराम की नजर मीना पर पड़ी, पर मीना की नजर जमीन पर पड़े दूध पर गड़ी थी।
"मीना! दूध तो..."
"भोले बाबा पर चढ़ गया।" मीना सखाराम को बीच में काटते हुए बोली।

महिलाओं की आजादी का सवाल

– ✍ शकुंतला देवी

महिलाओं के प्रति पुरुषों की नकारात्मक सोच और प्रवृति के कारण महिलाओं के ऊपर होने वाले अत्याचार, शोषण और जुल्म की कहानी कोई कुछ सालों की नहीं है, बल्कि यह सदियों से होता आया है। स्वतंत्रता के उपरान्त महिलाओं को उनका अधिकार दिलाने के लिए अनेक नये कानून बनाए गए। यहां तक कि परिवार में होने वाली हिंसा के विरुद्ध सशक्त कानून जहां बनाया गया, वहीं पर उनके साथ होने वाले अनेक तरह के भेदभावों, अत्याचारों और लिंग–भेद संबंधी भेदभाव और अनाचार को समाप्त करने के लिए भी कई प्रकार के कानून बनाए गए हैं। आज महिलाएं साहित्य, संगीत, कला, संस्कृति, राजनीति, नौकरी, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सेना, पुलिस, चिकित्सा, अनेक प्रकार के संगठनों और आंदोलनों तक में अपनी सशक्त भूमिका निभा रही हैं। शहरों में कमोवेश पुरुष–महिला दोनों एक ही कार्यालय में साथ–साथ काम करते हैं और अपने सहकर्मी के प्रति सहिष्णुता का नजरिया भी रखने लगे हैं– कुछ अपवादों को छोड़कर। लेकिन गांवों में अभी स्थिति काफी कुछ पुरुष वर्चस्व वाली ही बनी हुई है। कई वर्गों और जातियों में तो आज भी स्त्री को चहरदीवारी के अंदर ही कैद करने की पुरानी परंपरा चली आ रही है। यहां तक कि ग्राम पंचायतों और क्षेत्र पंचायतों में चुनी गई महिलाओं का कार्य, उनके नजदीकी पति, भाई या देवर ही देखते हैं। कई स्तरों पर पर्दा प्रथा को बनाए रखा गया है। इस दिशा में अभी आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

अभी तक यह माना जा रहा है कि महिलाओं को उनकी आबादी के अनुसार उन्हें उनका हक दिला देने से महिलाओं की स्थिति में अमूलचूल बदलाव आयेगा। इससे जहां उनका शोषण रुकेगा वहीं पर पुरुषों पर आश्रित रहने की मजबूरी से, उन्हें छुटकारा मिल जाएगा। लेकिन अनेक कानून, दण्ड–विधानों और योजनाओं के बनाने और लागू करने के बावजूद पुरुष–महिला पूरकता का वातावरण समाज में नहीं बन पाया है। यदि महिलाएं जागरूक हो भी रही हैं तो उन्हें कई तरह से आलोचनाओं, परेशानियों और संघर्षों का सामना भी करना पड़ रहा है। पुरुष अपनी एकाधिकार की प्रवृति को छोड़ना नहीं चाहता है और महिलाएं परंपरागत अपने कार्यों से विरक्त नहीं हो पा रही हैं। जिस दिशा में महिलाओं में बदलाव हो रहा है, वह दिशा भारतीय संस्कृति के अनुरूप होते हुए भी कहीं न कहीं पश्चिमी संस्कृति से भी प्रभावित लगती है। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में विवाह–विच्छेद की समस्या जहां बढ़ी है वहीं पर अश्लीलता, कामुकता और पश्चिमी स्वछंदता की प्रवृति भी दिशाहीन बनती गई है। ऐसे में संयुक्त परिवारों का टूटना, एकल परिवार बसाने की प्रवृति, संकुचित दायरे में रहने की आदत जैसी समस्याएं नई नारी में देखने को मिल रही हैं। इससे कई स्तरों पर, कई तरह की समस्याएं पैदा हुई हैं। लेकिन इसमें सारा दोष महिलाओं का ही नहीं है। पुरुष भी 'एकला चलो रे' का हिमायती बनता जा रहा है। वह यह नहीं सोचता कि परिवार में मां, बहन, छोटे भाई, पिता और अन्य लोगों का संग, उसका बचपन से है। उनके प्रति उसका एक कर्तव्य और गहरा रिश्ता है। इस रिश्ते को 'अपना परिवार' बसाने के नाम पर कमजोर करना, या तोड़ना नहीं चाहिए। नई नवेली दुलहन को परिवार में जैसा माहौल दिया जाएगा, वह वैसे ही ढलती जाएगी। ऐसे में जहां दुलहन के सास–ससुर (पति के माता–पिता) के प्रति सद्भावना और प्रेम की भावना दुलहन में प्रारम्भ से भरने की आवश्यकता होती है वहीं पर नई नवेली दुलहन की भावनाओं, संस्कारों, प्रवृतियों और इच्छाओं का भी ध्यान देने की जरूरत होती है। ऐसे

अवसर परिवार में आने ही नहीं देना चाहिए कि कुछ बेमतलब की बातों पर आपसी रिश्तों में दरार आए और टकराव बढ़े।

महिलाओं को कमजोर बनाने वाले जो कारक हैं, उन कारकों को सबसे अधिक महिलाओं को ही समझने की जरूरत है। एक, सशक्त महिला दूसरी कमजोर महिला को सशक्त बनाने में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है उतना पुरुष नहीं निभा सकता। यह स्त्री स्त्री के प्रति पूरकता को बढ़ाने का कार्य है। यह इस लिए आवश्यक है कि बहुत से स्त्री संबंधी अनेक मामलों में–जिसमें दहेज, बेमेल विवाह, बाल विवाह, भ्रूणहत्या, अशिक्षा, कुपोषण, प्रताड़ना, क्रूरता, शोषण, जुल्म, घरेलू हिंसा, अप्रियता और असहजता जैसे अनेक बुराइयों, कुप्रथाओं और समस्याओं में पुरुष के साथ महिलाएं भी सम्मिलित रहती हैं। यदि गंवई और शहरी दोनों तरह के परिवारों में महिला महिला की पूरक बन जाए तो पुरुष द्वारा किये जा रहे अनेक तरह के शोषण, हिंसा, अत्याचार, व्याभिचार, क्रूरता और असामाजिक बर्तावों से स्त्री को छुटकारा मिल सकता है। एक सबला नारी एक अबला नारी को सबला बनाकर अनेक पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक बुराइयों, समस्याओं और कुप्रथाओं से मुक्ति दिला सकती है। इसमें वर्ग, जाति, क्षेत्र और स्वार्थगत बुराइयों से ऊपर उठना भी जरूरी है।

यदि यह मानकर प्रत्येक पुरुष स्त्री के साथ सहज व्यवहार करे कि प्रत्येक मानव में स्वभावगत कमियां, दोष और बुराइयां होती ही हैं, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, तो पुरुष में अपने को स्त्री से सबल मानने की धारणा खत्म हो सकती है। इसी तरह स्त्री को पुरुष के साथ तारतम्य बनाते हुए बेहतर पूरकता का व्यवहार करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। हम सभी अपूर्ण हैं, 'चाहे कितना बड़ा सा बड़ा ज्ञानी हो, विज्ञानी हो, धनवान हो, राजनेता या महापुरुष ही क्यों न हो। इस सत्यता को स्वीकार करते हुए प्रत्येक स्त्री पुरुष को आपसी संबंधों को सहजता के साथ बनाए रखना चाहिए। इसी से स्त्री वर्ग सबल बनेगा और पुरुष में स्वयं को सर्वोच्चता के भाव से मुक्ति मिलेगी।

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कंप्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

होली खेलन नहिं हम जायो रे कीचड़ डार देत होलिहार

– अखिलेश आर्येन्दु

वैदिक व संस्कृत ग्रंथों में होली शब्द तो नहीं है लेकिन फाल्गुन मास की विविधताओं और उत्कृष्टताओं के रंग अनेक मंत्रों व श्लोकों में पिरोए मिलते हैं। संस्कृ–त, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी होली या मदनोत्सव का वर्णन कई रूपों में मिलता हैं। इसी तरह भारत की तमाम भाषाओं की अनेक विधाओं में होली किसी न किसी रूप में मौजूद है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के मुताबिक होली से नए साल की शुरूआत होती है। प्रकृति में एक नया उत्साह, नया रंग, मौलिकता और नई चेतना का एहसास होता है। वैदिक वांगमय में इस पूर्णता को कई रंगों में देखने की कोशिश की गई है। होली के जितने भी रंग हैं सबके अपने खास मायने, भाव–दृश्टि, रंग और संदर्भ हैं। इन संदर्भों से जुड़ी होती है हमारी अंतस की वह चेतना जो होली को एक त्योहार के रूप में ही नहीं बल्कि उत्सव और जीवनदर्शन के रूप में ग्रहण करने के लिए तैयार करती है। यह हमारी अंतस–चेतना का एक ऐसा निष्छल और स्वच्छ जीवन–पर्व है जो हमें स्वयं में डूबने, प्रेम तथा शुभ को सबके सामने सहज रूप में स्वीकार करने के लिए प्रेरित करती है। जो ऊर्जा, शक्ति, सत्साहस, नेह और पवित्रता इस पर्व से हम हासिल करते हैं, उसे यदि साल भर बढ़ाते जाएं तो हमारी जिंदगी भी वैसी ही मजेदार और उत्सवधर्मी के रंग में डूबी हुई बन सकती है जैसे होली के दौर में है।

वैदिक और पौराणिक मिथकों के साथ जुड़े होली के प्रतीकों के खास तरह के मायने बताए जाते हैं, लेकिन वक्त के साथ वे सारे प्रतीक अपने खास मायने खोते गए। और अब होली अपने सांस्कृतिक और सामाजिक वैभवों को खोकर महज कीचड़, रंग, पेंट, जुआ खेलने और शराब पीने के खास दिन तक सीमित रह गई। बहुराष्ट्रीय बाजारीकरण के दौर में विदेशी उत्पादों से भरे भारतीय बाजारों में होली के एक भी भारतीय रंग–ढंग नहीं दिखाई पड़ते, जो इसके खास और अद्भुत होने की तस्वीर पेश करते हों।

अश्लीता, कामुकता और फूहड़ गानों पर डांस करते शराब में डूबे बूढ़े–जवान, डीजे संस्कृति के कानफोडू लाउडस्पीकरों के बीच होली की जीवंतता शयद ही कहीं दिखाई पड़ती हो। गौरतलब है दूसरे पर्व–त्योहारों की तरह होली मनाने की औपचारिकता निभाकर हम भले 'प्रेम–रंग' में डूबने का स्वांग कर लें, हम उस सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूपों से नहीं जुड़ पाते जिसके लिए होली 'सबमें खास' मानी जाती है।

यदि होली के प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक रंगों और संदर्भों को समझने की कोशिश करें तो यह ऐसा त्योहार है जो हमारी जिंदगी में उत्सव और आनंद का संचार करती है। देखने की बात यह है कि होली का उत्सव और आनंद हमारी अंतर्चेतना से गायब होती जा रही है। प्राकृतिक रंगों और भावों की जगह बाजारू रंग और भावों ने हमें होली के आनंद और उत्सवधर्मिता से दूर कर दिया है। मिलावट और भ्रष्टाचार रूपी खर–पतवार होलिका दहन में जलने के बजाय और ज्यादा गाढ़े रंग में रंग दिखाई दे जाते हैं। क्या होली में सभी तरह के खामियों, भ्रष्टाचार, यौन अपराध, गैर इंसानी कवायदों को खत्म करने का खास दिन नहीं बन सकता? क्या हमारे लिए यह विचारणीय नहीं है कि होली महज रंग–अबीर या कीचड़–पेंट को एक दूसरे पर उछालने की जगह मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक स्वच्छता और मूल्यपरकता को स्वीकारने व संकल्प का खास दिन भी हो सकता है।

कृषि लोक संस्कृति में होली का रंग सभी रंगों में बेजोड़ और उत्सवधर्मी है। इसी तरह सांस्कृतिक, साहित्यिक, कला और जीवन शैली के भी अनेक रंग इनमें घुले मिलते हैं। इस त्योहार की सबसे बड़ी खासियत यही है कि इसके जितने भी रंग हैं, सभी रंगों की छटा अलग–अलग होते हुए भी एक है। व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्कृति, साहित्य और निखिल विष्व को अपने रंगों में पिरोए होली का यह त्योहार

भले ही भारतीय हो लेकिन यह प्रकृति और सारे विश्व का उत्सव–पर्व में प्रकट होने वाला मौलिक और नूतन आनन्द है जिसे सभी मतों, मजहबों और सम्प्रदायों के लोग बहुत ही प्रेम के साथ बिना किसी दुराग्रह के मनाते हैं।

भारत में विभिन्न अंचलों की होली अलग–अलग मान्यताओं, परम्पराओं और रंगों से रंगे होने के बावजूद सभी रंगों का एक ही रंग है, वह है सहिष्णुता का रंग। होली एक ऐसा उत्सवधर्मी त्यौहार है जो जीवन की वासंती छटा को प्रेम के रंग में रंगकर हमें सहिष्णु होने की प्रेरणा देता है। गुरु गोबिंद सिंह महराज ने होली का होला मोहल्ला कर दिया। तब से पंजाब में इसे इसी रूप में बनाया जाता है। कहा जाता है, गुरु गोबिंद सिंह ने छह दिन तक इस उत्सव को मनाने की परम्परा डाली। और इसे युद्ध यानी पौरुश से जोड़कर मनाने की परंपरा डाली। लंगर की पंरपरा भी इससे जुड़ी हुई है।

तमिलनाडु में होली को कमन पोडिगई कहा जाता है।

पंडित लेखराम जी के जीवन का प्रेरणादायक संस्मरण

एक युवक ने अमृतसर नगर में दीवार पर एक व्यक्ति को इश्तिहार लागाते हुए देखा व उसे पढ़ा। उसके अनुसार उस दिन आर्यसमाज मन्दिर में ऋषिभक्त पंडित लेखराम जी का प्रवचन होना था। वह युवक आर्यसमाज मन्दिर, अमृतसर में प्रवचन से काफी समय पहले पहुंच गया। वहां उसने देखा कि इश्तिहार लगाने वाला व्यक्ति ही आर्यसमाज में झाड़ू लगा रहा है। इसके बाद उसने आर्यसमाज में दरियां बिछाई। प्रवचन के आरम्भ का समय होने वाला था अतः लोग वहां आने लगे। कुछ ही देर में समाज मन्दिर में हजारों की भीड़ हो गई। यह युवक यह सब कुछ देखता रहा और स्वयं श्रोताओं के बीच बैठ गया। आर्यसमाज के मंत्री व प्रधान जी भी वहां आ गये। प्रवचन से पूर्व एक व अधिक भजन प्रस्तुत हुए।

मंत्री जी ने उस महामानव जिसके प्रवचन सुनने लोग समाज मन्दिर में आये थे, प्रवचन देने की प्रार्थना की। वह युवक देखता है कि इश्तिहार लगाने वाला, समाज मदिर में झाड़ू लगाने वाला व दरिया बिछाने वाला व्यक्ति ही प्रवचन कर रहा है। यह देख कर उसे सुखद आश्चर्य हुआ। यह है पं. लेखराम जी के जीवन की महानता। वह आर्यसमाज के महान प्रचारक व विद्वान् होकर भी छोटे से छोटा काम अपने हाथो से करने में संकोच नहीं करते थे। इसमें उन्हें किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं होता है। पंडित लेखराम जी को सादर नमन्।

जो युवक उनके स्वामी दयानन्द के मिशन को देखकर प्रभावित हुए थे। वह आगे चलकर आर्यसमाज के महान् विद्वान् पंडित आत्माराम अमृतसरी के नाम से प्रसिद्ध हुए।